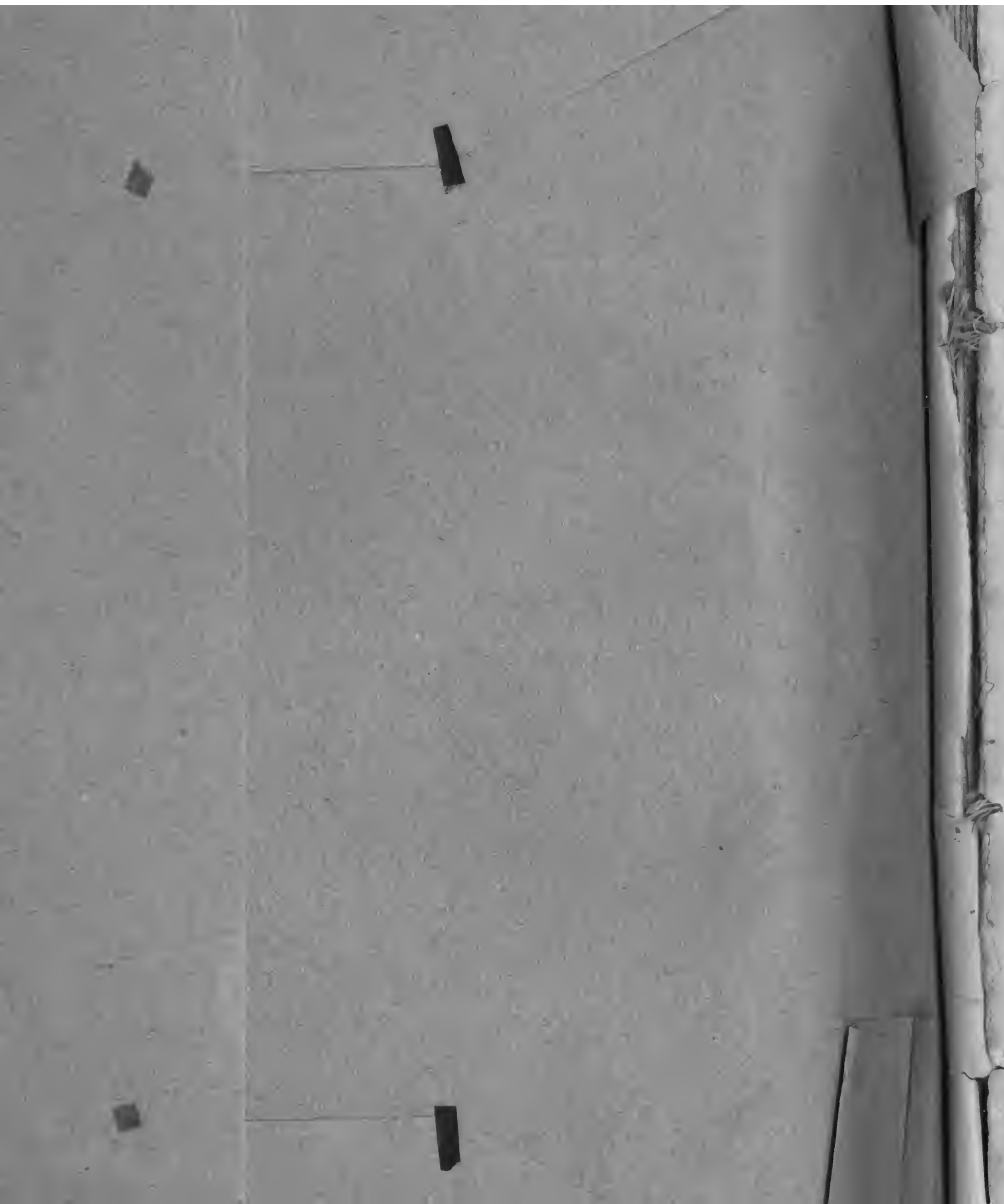

टूरिस्ट

लिया है । उ

से एक मुझ

मेरे हाँ या

लगता है—

क्या

सिर्फ त

सौ रुपये प

मैं कुछ

इस बार व

है—हमारे

में है । डेक

से मेरा चेह

हम उसे देखकर ही फैसला करेंगे !

यहाँ से कोई दूर नहीं है डल। टैक्सी से सिर्फ पाँच मिनिट का रास्ता है।

मैं अपने दोनों साथियों से सलाह-मशविरा कर, हाउस-बोट देखने चला गया। उसने जैसा नक्शा खींचा था, वैसा ही है सब कुछ। कहीं कुछ भी कमी नहीं है—अच्छा खासा ड्राइंग-रूम। बढ़िया कश्मीरी फर्नीचर। दो बेड-रूम। लेट्रिन, बाथ-रूम और किचिन—सभी कुछ तो है। यह सब दिखा लेने के बाद वह मुझे हाउस-बोट के डेक पर पर ले जाता है और कहता है—यहाँ कुर्सी पर बैठे-बैठे ही डल की सारी रंगीनियाँ देखते रहिए—कहीं और जाने की जरूरत नहीं।

शाम होते-होते हम हाउस-बोट में पहुँच जाते हैं। ठंड काफी बढ़ चुकी है—अक्टूबर का महीना है। सबसे पहले हम तीनों गरम कपड़े निकाल कर पहिनते हैं। इसके बाद मैं उसे पास बुला कर पूछता हूँ—क्यों, क्या नाम है तुम्हारा ?

साब, मुझे अब्दुल रशीद कहते हैं। अधेड़ उम्र का है वह।

चाय मिलेगी ?

चाय ही क्यों, आपकी हर फरमाइश पूरी होगी।

तो रशीद मियाँ मेरे लिए चाय लाओ। मेरे ये दोनों साथी चाय नहीं पीते।

ये ठंडा मुलुक है—वगैर चाय के कैसे चलेगा ? वह उनकी ओर देखने लगता है।

सब चलेगा—हम सब चला लेंगे। तुम साहब के लिए ही लाओ। ओंकार बाबू बोलते हैं।

और सोमेश्वर बाबू तभी कह उठते हैं—चाय के साथ कुछ नाश्ता भी लाना आमलेट मिलेगा ?

हम बढ़िया आमलेट खिलायेगा। आप लोग भी खायेंगे ?

मैं जोर से हँस पड़ता हूँ—अरे, ये चाय तक तो पीते नहीं, आमलेट क्या खायेंगे ? इतना तो तुमको खुद समझ लेना था, रशीद मियाँ !

वह चाय लेने चला गया है। हम लोग अब डेक पर आ गये हैं। वहाँ तीन-चार कुर्सियाँ पड़ी हैं और बीच में एक छोटी गोल टेबिल भी है। खड़े-खड़े हम ठगे-से डल को देखते रह जाते हैं। डल के पानी पर स्ट्रीट लैम्प की मर्करी लाइट झिलमिला रही है। ऐसा लगता है जैसे चाँदनी बिखर गयी है। हवा का हलका सा झोंका आया और वह देखो, लहरों के साथ-साथ रोशनी भी थिरकने लगी। अब इस हवा ने तो एकबारगी ही बोट को जोर से डगमगा दिया है। मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं पहिली बार घोड़े पर सवार हुआ हूँ, कहीं ऐसा न हो कि वह पटक दे।

इसी बीच ओंकार बाबू कहते हैं—क्यों भाई, क्या हमें झील का पानी पीना पड़ेगा ?

मैं समझ गया कि तुम क्या कहना चाहते हो। हम पीने का पानी बाहर से मंगवा लेंगे। तुम तो अभी से घबड़ाने लगे यार !

इसके बाद ही तपाक से सोमेश्वर फर्माते हैं—न तो हम यहाँ का पानी पियेंगे और न कुछ खायेंगे।

यह क्यों ? आप लोगों को शुद्ध शाकाहारी भोजन मिलेगा। मैं भी वही खाऊँगा।

ओंकार बाबू ने यह कहकर मेरी बात जड़ से काट दी—अब्दुल रशीद का बनाया हुआ खाना हम कैसे खा सकते हैं ?

यहाँ तो प्रायः सभी होटलों में मुसलमान ही खाना बनाते हैं। हिन्दू यहाँ हैं कितने ? फिर इंसान तो इंसान है—क्या हिन्दू क्या मुसलमान। जमाना कहाँ से कहाँ जा रहा है और आप लोग जहाँ के तहाँ हैं—एक कदम भी आगे बढ़ना नहीं चाहते। जैसी तुम्हारी इच्छा।

इसी समय अब्दुल रशीद आकर कहता है—चाय तैयार है।

हम नीचे उतर आते हैं। मैं चाय पीने लगता हूँ।

चलो, हमें शहर ले चलो। किसी अच्छे होटल में छोड़कर वापस आ जाना। ओंकार बाबू अब्दुल रशीद से कहते हैं।

वह मुझसे पूछता है—डिनर में क्या लेंगे आप। जो भी चाहेंगे तैयार हो जायेगा।

पराठा, एग करी, सलाद और पापड़—बस इतने से काम चल जायगा।

अच्छा साब।

वह उन दोनों के साथ बाजार चला जाता है। मैं फिर डेक पर आ जाता हूँ। अँधेरे ने डल को अपनी बाँहों में समेट लिया है। हाउस-बोटों के झरोखों से हल्का-सा फीका उजाला निकल कर डल को गुदगुदा रहा है। झीनी ओढ़नी के घूँघट में, लाख कोशिशों के बाद भी जैसे कोई अपना मुँह नहीं छिपा पाता, साफ दिखाई दे जाता है, उसी प्रकार सामने से जो शिकारें अपने गंतव्य को लौट रहे हैं, उनका सब कुछ मुझे साफ दिखाई दे रहा है।

—अभी-अभी लाइटर से किसी ने अपनी सिगरेट जलायी है और उससे सट कर लेटी कोई औरत मुझे साफ दिखायी दे गयी है। लाइटर की पल भर की रोशनी तो अब गायब हो चुकी है किन्तु डल पर फैली झीनी-झीनी रोशनी में जो कुछ दबा-दबा-सा दिख रहा है, उससे चित्र के रंगों का ज्ञान भले ही न होता हो किन्तु रेखायें तो स्पष्ट दिखायी दे ही रही है। वह उसे अंकोरता है। सिगरेट ओंठों से हट जाती हैं। और यह उस शिकारे की रंगीन झाँकी है, जो इसी समय कोई दस फुट की दूरी से गुजरा है।

लो, अब जो यह शिकारा जा रहा है, उसमें दो पुरुषों के बीच कोई एक स्त्री है। दो किनारों के बीच की यह बरसाती नदी दोनों को भिगोये जा रही है—अपने साथ बहाये ले जा रही है। यह मैं साफ-साफ देख रहा हूँ।

—इस तीसरे शिकारे में, जो मेरी बोट के एकदम पास से धीरे-धीरे जा रहा है, अकेली एक जवान कश्मीरी लड़की है। उसकी गोद में एक बड़ा-सा गुलदस्ता भी है। वह स्वयं पतवार चला रही है—छप-छप।

अँधेरा हो जाने के बावजूद कोई आठ-दस शिकारे तो मेरी नजरों को चूमते हुए निकल गये। सन्नाटा धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। अब शिकारे नहीं, डोंगे जब-तब आ जा रहे हैं जो सड़क और हाउस बोट के बीच मात्र पुल का काम कर रहे हैं।

डेक पर मुझे काफी सर्दी महसूस होने लगती है। मैं ड्राइंग-रूम में आकर सोफे पर लेट जाता हूँ। अभी जो नजारे मेरी आँखों ने देखे थे, वे मुझे सोचने को विवश करते हैं—कश्मीर सौन्दर्य और प्रणय की क्रीड़ा-भूमि है। यहाँ ठंडक में स्वयं होकर आग जागती है। इस आग की आँच को तापने वाला भी साथ होना चाहिए। बिना किसी नारी को साथ लिए, योंही एकाकी चले आने का कोई अर्थ नहीं। सुन्दर से सुन्दर मधु-पात्र भी बिना मदिरा के किस काम का।

तभी किसी के पैरों की धीमी आहट मेरे कानों में पड़ती है! मैं उठ कर देखता हूँ—द्वार पर एक कश्मीर की कली उग आयी है। वह मुझसे कहती है—साब, खाना लगाऊँ? अब्बा कह गये थे कि मुझे लौटने में देर होती दिखे तो तू साहब को खाना खिला देना।

मैं दो क्षण तो उसे देखता रह जाता हूँ—यह रूप का चाँद इस अँधेरी रात में कहाँ से आ गया।

हाँ-हाँ, लगाओ।

आप खाना खाने की टेबिल पर खायेंगे या यहीं इस गोल टेबिल पर लगा दूँ? वह एक-एक शब्द तोल-तोल कर बोल रही थी। न एक शब्द ज्यादा न एक शब्द कम। केवल एक शब्द के इधर से उधर हो जाने पर बात कुछ की कुछ हो जाती है सन्तुलन खो जाता है।

यहीं इसी टेबिल पर लगा दो।

वह टेबिल पर चीजें हटाने लगती है ।

तो तुम रशीद मियाँ की बेटी हो, क्या नाम है तुम्हारा ?

नर्गिस । चटकी हुई कली पर जैसे शबनम चू पड़ती है, उसी तरह उसके तराशे हुए चेहरे से हल्की-सी हँसी चू पड़ी । वह टेबिल की चीज़ें हटाकर चली गयी ।

काँच के नक्काशीदार जग में वह पानी ले आयी । उसे टेबिल पर रखकर जब वह जाने लगती है तो उससे मैं पूछता हूँ, यह डल का पानी तो नहीं है, नल का है न ?

वह ठिठकती हुई सी जवाब देती है—आप लोगों के लिए मैं खुद अभी शाम को नल से पानी भर कर लायी हूँ ।

इसके बाद वह टेबिल पर खाना लगा कर वहीं पास में खड़ी हो जाती है ।

आप खाना शुरू करें । मैं एक-एक कर गरम पराठे लाती जाऊँगी । वह धीरे से कहती है ।

मैं खाने लगता हूँ । वह अब भी खड़ी है । मैं दो कौर खाकर कहता हूँ—नर्गिस तुम खड़ी क्यों हो । बैठो ।

जी, ठीक हूँ ।

वह गरम-गरम पराठे लाती जाती है । मैं खाता जाता हूँ । जी भर कर खा लिया । खाना भी अच्छा बना था और खिलाने वाली भी खूब थी । अब वह पीतल की चिलमची और टोंटीदार सफेद जग में गरम पानी ले आयी है । वह पानी डाल रही है और मैं हाथ धो रहा हूँ—साथ-साथ रूप की चाँदनी से मेरा मन भी धुलता चला जा रहा है । इसके बाद वह साफ धुला सफेद टावेल ले आयी है । मैंने हाथ मुँह पोंछ कर उसे लौटा दिया । मैं सिगरेट सुलगा लेता हूँ । वह चली जाती है ।

दो मिनिट के बाद आ कर पूछती है—क्या आप काफी पियेंगे ?

खाने के बाद मैं आदतन काफी नहीं पीता । ठंड ने मुझे काफी पीने के लिए मजबूर कर दिया, ले आओ ।

वह काफी लेने चली जाती है । मेरा मन सिगरेट के धुएँ के छल्लों में कश्मीर के सजीव सौन्दर्य को समटने लगता है । नर्गिस की पूरी तस-वीर मेरे सामने आ जाती है—घानी सलवार, चोगानुमा घेरदार ढीला-ढाला घुटनों तक का पीले रंग का लम्बा कुरता, मानों सरसों फूली हो । सिर पर बेल बूटेदार रूमाल लपेटे है । कानों में चाँदी की बालियों के गुच्छे यों ही डोल-डोल जाते हैं । गले में पड़ी अजीब रंगों के गुरियों की मालाओं ने उसके सीने को इन्द्रधनुषी बना दिया है । हाथों में चार-चार पीली चूड़ियाँ हैं । ठंड से बचने के लिए उसने गरम चुस्त जाकिट भी पहिन रखी है जिस पर रेशमी धागों ने चार चिनार खड़े कर दिए हैं ।

वह काफी ले आयी । इसलिए रुकी खड़ी है कि मैं पी लूँ तो वह खाली प्याला ले कर चली जाय । अभी तक उसने मेरी ओर आँख उठा कर देखा नहीं है ।

जैसे ही मैं काफी पी चुकता हूँ, वह प्याली लेकर चली जाती है ।

द्वार से सीधी आकर नरम कुनकुनी धूप हमारी गोद में खेलने लगी । अब्दुल हमीद मेरा नाश्ता ले आया । मित्र अखरोट की कुछ गरी और एक कश्मीरी सेब मेरी ओर बढ़ाकर विनोद करते हैं—तुम्हारे भाग्य में यह सब नहीं है । तुम तो बस मुर्गी-अंडों से लगे रहो ।

नहीं-नहीं, ऐसी बात नहीं है । मैं यहाँ की हर चीज का स्वाद लूंगा । अभी कल तो हम लोग आए हैं ।

कल हम लोगों ने वैष्णव होटल में बहुत बढ़िया खाना खाया, कोई महँगा नहीं था ।

तुम लोग खाना खाने चले गए और मैं डेक पर खड़ा, सरकते हुए शिकारों में जाने कितनी रंगीनियाँ देखता रहा । मैंने उन्हें जान-बूझ कर छेड़ा ।

अच्छा जल्दी खाओ-पियो । इसके बाद हम सबसे पहले शिकारे पर

डल को सैर करेंगे ' ओंकार बाबू ने थोड़ी व्यग्रता से कहा ।

रशीद मियाँ, हमारे लिए किसी बढ़िया शिकारे का इन्तजाम करो । आज हम सारे दिन उसमें घूमेंगे ।

अच्छा साब ।

सबसे पहिले मेरी दृष्टि शिकारे के नेम प्लेट पर गयी—एवरेस्ट ।

मैं खिलखिला पड़ता हूँ—बहुत खूब, अब हम एवरेस्ट पर चढ़ कर डल झील की लहरों पर उतरेंगे । मेरे यह कह चुकने के बाद कहीं उनकी आँखें शिकारे के नाम पर जाती हैं ।

शिकारा रवाना होने के पहले अब्दुल रशीद शिकारे वालों को समझाता है नूर मुहम्मद, साहब लोगों को बढ़िया सैर कराना । खासी अच्छी बख्शीश मिलेगी ।

शिकारा रवाना हुआ । मित्र मसनद से टिक कर बैठे । मैंने उन दोनों के बीच थोड़ा आगे हट कर अपना आसन जमाया । चप्पू की मीठी आवाजों के साथ-साथ शिकारा आगे बढ़ रहा है । रात की डल झील से यह सबेरे की डल झील एकदम भिन्न है । पूरी झील पर सुनहरी चादर चम-चम चमक रही है । मैं अपना कैमरा खोल, शटर ठीक-ठाक कर, एक शिकारी की तरह चौकन्ना हो जाता हूँ । ऐसा न हो कि मैं बाजू से गुजरते किसी शिकारे की ढेर सारी खूबसूरती छोटे से कैमरे में समेटना चाहूँ, क्लोजप लेना चाहूँ, और मेरे कैमरा ठीक करते-करते वह आगे खिसक जाय । निशाना चूक जाने के बाद फिर शिकारा कहाँ हाथ आता है ।

और भी कई शिकारे सैर को निकले हैं । कुछ की मजबूरी उन्हें सबेरे-सबेरे डल में ले आयी है । यह शिकारा जो अभी-अभी हमारे शिकारे से आ टिका है—उसमें रात की रंगीनी नहीं, सबेरे की गरीबी है । सफेद बालों वाली एक बीमार-सी बुढ़िया अपने लड़के को पास बैठाये सब्जी बेचने निकली है । हम सब्जी खरीद कर क्या करते ? वह देखो, शिकारे पर ही चाय की पूरी दुकान सजाए कोई बुड्ढा हमारी ओर बढ़ रहा है और

यह जो शिकारा सामने से आ रहा है, उसमें कोई लड़की रंग-रंग के फूलों की नुमाइश लगाए बैठी है । पास आकर कहती है—फूल खरीदेंगे साहब मैंने फूल तो नहीं खरीदे, कैमरे का शटर अवश्य धीरे से दबा दिया ।

अब हम नेहरू पार्क के सामने आ गए हैं । यह झील के बीच में है। ओंकार बाबू ने कहा—चलो उतरें । तभी नूर मुहम्मद ने टोंका शाम को देखियेगा । बिजली के उजेले में इसका नूर दुगना हो जाता है । हमने उसकी नेक सलाह की कद्र की । आगे बढ़ गये । यह स्वीमिंग-पूल आ गया । इतने सबेरे इनको ठंड भी मालूम नहीं होती । कैसे ऊपर जा-जा कर धड़ाम से पानी में कूद रहे हैं । गीले कपड़ों से जिस्म कैसा सट गया है । हर अंग अपनी सुन्दरता अपने आप बखान रहा है । एक दूसरे का हाथ पकड़-पकड़ कर लहरों के बीच खिलवाड़ कर रहे हैं—तैरना तो नाम भर का है । इनमें अधिकांश विदेशी हैं । पुरुषों की अपेक्षा स्त्री अधिक हैं ।

नूर मोहम्मद ने शिकारे की चाल तेज कर दी है । मैंने उससे पूछा—क्यों इतनी तेजी के साथ डाँड़ चला रहे हो ?

चश्माशाही, शालीमार और निशात बाग सभी की सैर आज ही इसी शिकारे से करनी है, साब ।

और चार चिनार ।

वहाँ कोई खास बात नहीं है । एक छोटे टापू पर चिनार के चार दरख्त हैं, जिन्हें आप यहीं से देख रहे हैं । सबसे पहले चश्माशाही देखिये ।

थोड़ी देर में उसने सड़क से लगी सीढ़ियों पर हमें पहुँचा दिया और बोला—यहाँ से सिर्फ एक मील की दूरी पर चश्माशाही है । पक्की सड़क है वहाँ तक । टहलते हुए चले जाइये । मैं आपके इन्तजार में रहूँगा ।

ठीक पन्द्रह मिनिट के बाद हम चश्माशाही के सामने को सीढ़ियों पर हैं । सीढ़ियों के दोनों ओर डेलिया और गुलाब के बड़े-बड़े फूलों से लदे झाड़ जैसे हमारा स्वागत करने खड़े थे । वहीं से गाइड हमारे पीछे हो लेता है । वह कह चलता है—यह बादशाह जहाँगीर के जमाने का है ।

वह इसी चश्मे का पानी पीता था, इसीलिए इसका नाम चश्मा-शाही पड़ा ।

तो चलो, सबसे पहले हम चश्माशाही के पानी का स्वाद लेंगे ।

यहाँ चश्मा तो है ही—बढ़िया बाग भी है । आप यह जो छोटी-सी खूबसूरत इमारत देख रहे हैं, इसी में जहाँगीर अपनी बेगम नूरजहाँ के साथ ठहरा करता था ।

हम दो मिनिट में ही चश्मे के करीब जा पहुँचते है । पानी मोती की तरह चमक रहा है । नीचे छोटा-सा जल-स्रोत है जिसका पानी धीरे-धीरे ऊपर जमीन की सतह पर आ रहा है ।

गाइड किसी से गिलास माँग लाया । इसके बाद एक हम तीनों पानी पीते हैं—कितना ठंडा, कितना मीठा ।

इसके बाद हम गाइड के साथ नूरजहाँ और जहाँगीर के क्रीड़ा-घर को देखते हैं । उससे सटी फूलों की लतायें सुनहरी धूप में सचमुच फूल उठी हैं । मुझे ऐसा लगा, यहाँ तो एक नहीं, अनेक नूरजहाँयें एक ही जहाँगीर के सीने से चिपट गयी हैं ।

अब हम उसकी छत पर आ गये हैं—दूर तक फैली डल झील को आँखों से पी रहे हैं । बाग के तरह-तरह के ताजे फूल हमें भौंरा बना देना चाहते हैं । तभी गाइड कहता है—यह तो आप आज का बाग देख रहे हैं, शाही जमाने में तो यह जन्नत का टुकड़ा रहा होगा । चलिए, अब बाग की सैर करें ।

बाग की सैर कर चुकने के बाद हमने गाइड को छुट्टी दे दी।

अब हम दूब के हरे गलीचे पर बैठे हैं । बाग में सुन्दरता का मेला लगा है । मेरी दृष्टि तो चश्मेशाही के एकदम पीछे खड़े हरे-हरे सुरमई रंग के पहाड़ पर ठहर गयी है । मुझे लगा, कोई पहरेदार अनन्तकाल से खड़ा-खड़ा इसकी पहरेदारी कर रहा है ।

तभी सोमेश्वर आश्चर्यचकित-से, एक स्थल विशेष की ओर अँगुली

से संकेत करते हैं—देखो तो खरे बाबू, वे चारों के चार झाग भरे गिलास ओठों से लगाये जाने क्या पी रहे हैं । उनमें तीन औरतों के बीच एक मर्द है । वे तीनों औरतें बारी-बारी से अपने गिलास उस मर्द के ओठों से जुठला रही हैं । शायद वे शराब पी रहे हैं, तभी ऐसी मस्ती में हैं और उनके साथ जो दो आठ-सात साल के बच्चे हैं, उनके हाथ में भी गिलास थमा दिये गये हैं । यह सब क्या है ?

वह कोई सैनिक अफसर था । कम से कम कैप्टिन तो होगा ही । मैं सहज साधारण भाव से कहता हूँ—इसमें आश्चर्य की क्या बात है । अल्ट्रा-माडर्न लाइफ की तो यह शुरुआत है । देखते नहीं कैसे मजे की ठंड है । बीयर पी-पी कर गरम हो रहे हैं । और वे तीन गिलास पारी-पारी से चौथे गिलास को अपनी गरमी ही तो पहुँचा रहे हैं, जिससे वह चौथा गिलास जरूरत से ज्यादा गरम हो जाय । इसके बाद मैं अपने कमरे का शटर जल्दी से दबा देता हूँ ।

इसी समय एक साँवला-सा, सजा-धजा युवक वहीं थोड़ी दूर पर आकर बैठ गया । उसके पास भी कैमरा है । मैंने उसे अपना कैमरा थमा दिया और बोला—प्लीज, हम तीनों का एक स्नेप ले लीजिए ।

वह बड़ी खुशी से स्नेप ले लेता है ।

इसके बाद बातों का सिलसिला यों चलता है—

आप कहाँ रहते हैं ?

देहली ।

कब आना हुआ ?

कल शाम ।

कहाँ ठहरे हैं ?

एयरलाइन्स होटल में सामान डाल दिया है । अच्छा होटल नहीं है । सिर्फ दो-तीन दिन ही तो ठहरना है ।

बस—सिर्फ दो-तीन....

मैं देहली की एक ड्रामा पार्टी के साथ हूँ। यहीं पास के मिलिटरी सेण्टर में प्रोगाम देना है। पूरी पार्टी दो दिन बाद पहुँचेगी। श्रीनगर में मौज करने के लिए ही मैं पहले से आ गया हूँ।—आप लोग यहाँ कहाँ ठहरे हैं ?

ताजमहल—हाउस-बोट में। एकदम डल के सेण्टर में है। जैसा नाम है, सचमुच वैसी है भी।

सस्ती हाउस-बोटों में ठहरना तो नर्क में फँसना है। मेरे मन में भी आया था कि किसी हाउस-बोट में शिफ्ट हो जाऊँ। पर इस जमाने में एक आदमी के पीछे बीस-तीस रुपये प्रतिदिन खर्च करना एकदम नवाबी हो जायगी।

तभी ओंकार बाबू अपनी दरियादिली का परिचय देते हैं—आप हम लोगों के साथ आकर ठहर जाइये न। बहुत बड़ी बोट है। आलरेडी फोर बेड्स तो उसमें हैं ही।

बड़ी कृपा आपकी। आज ही शाम को आ जाऊँगा।

आपका शुभ नाम क्या है ? सोमेश्वर बाबू ने जानना चाहा।

मुझे श्यामसुन्दर श्रीवास्तव कहते हैं। म्युजिक-डांस-ड्रामा अकादमी से सम्बद्ध हूँ।

मैं जोर देकर कहता हूँ—आप निःसंकोच आ जाइये। अच्छी कम्पनी रहेगी।

हम सब पैदल डल की ओर चल पड़ते हैं।

मेरे दोनों साथी नित्य की भाँति भोजन करने वैष्णव होटल चले गये हैं और मैं अकेला बैठा बोर हो रहा हूँ। इसी बीच वह आ जाता है।—अरे आओ भाई श्याम, मैं अकेला मनहूस बना बैठा था।

आप कश्मीर में भी मनहूसियत महसूस करते है—अजीब हैं आप ! यहाँ की फिजायें तो मुर्दे में भी जान फूंक देती है।—वह कहता हुआ मेरे पास बैठ जाता है।

कोरी फिजाओं से क्या होता है—बढ़िया कम्पनी हो, तभी ऐसे स्थानों में सच्चा सुख मिलता है।

यह तो आपको कश्मीर आने के पहले सोचना था। आप विथ फेमिली क्यों नहीं आये ?

अरे, औरतों के साथ बड़ी झंझट होती है। दूसरे, हमारे ये मित्र सपरिवार आने को तैयार नहीं थे।

कश्मीर अकेले आने का कोई मतलब नहीं। वैसे यहाँ औरतों की कमी नहीं। यह हाउस-बोट वाला हो जरा से इशारे पर सब इन्तजाम कर देगा। कश्मीरी औरतों की क्या बात है ?

इसका मतलब यह हुआ कि तुमने यहाँ का कुछ भी छोड़ा नहीं है। मैं यह सब पसन्द नहीं करता।

आप की आप जानें, पर मैं दूध का धुला हुआ नहीं हूँ। वैसे यहाँ कई बार आ चुका हूँ पर फिर भी जब मौका मिलता है, चुम्बक की तरह खिंचा चला आता हूँ।

बड़ा मजेदार आदमी जान पड़ता है। पूरा भोगवादी है। जरा-सी देर में इसने अपने आप को मेरे सामने उघार दिया। अभी यह हाउस-बोट को लेकर एक नयी बात बता गया। क्या बूढ़ा अब्दुल रशीद भी यह काम करता होगा ? नर्गिस को मेरे मन की आँखों ने देखा—वह गुपचुप मेरे सामने खड़ी है।

तभी वह मुझे फिर छेड़ता है—जैसे बिना किसी गर्ल फ्रेन्ड के पिकनिक पिकनिक नहीं होती, उसी प्रकार बिना किसी औरत के कश्मीर कश्मीर नहीं लगता।

यह ठीक है कि औरत वह एक धुरी है जिसके बगैर कोई भी पहिया घूम नहीं पाता, किन्तु इसका यह मतलब तो नहीं कि जूठी थालियों में मुँह डालते फिरें।

इसके बाद और कई घंटे तक बातें चलीं किन्तु वह मुझे अपने रँग में

न रँग सका। यह दूसरी बात है कि नर्गिस के सौन्दर्य ने मेरा मन मोह लिया है। बगीचे के सभी फूल सूँघे जाने के लिए नहीं फूलते और न सभी अधखिली कलियाँ मसले जाने के लिए।

हम लोग रात का खाना खा रहे थे। तभी वे लोग भी होटल से लौटे। ओंकार बाबू मुझसे कहते हैं—कल शंकराचार्य के टेम्पिल चलने का प्रोग्राम है। खा-पी कर जल्दी सो जाओ। काफी खड़ी चढ़ाई है।

मैं कैसे चढ़ पाऊँगा। जरा सी चढ़ाई में तो मेरा दम फूलने लगता है।

संग-साथ में सहज ही चढ़ जाओगे। बीच-बीच में रुक कर आराम कर लिया करना।

तुम लोगों का साथ देने के लिए मैं चला चलूँगा, वैसे मैं मन्दिर के पत्थरों की पूजा की अपेक्षा मात्र मनुष्य की सेवा करने में अधिक सुख पाता हूँ।

उस दिन मैं रवाना होने के पहले अब्दुल से कहता हूँ—आज तुम भी हम लोगों के साथ चलो। मैं तुम्हारे साथ धीरे-धीरे चढ़ूँगा। ये लोग तो मेरी कछुआ जैसी चाल से बोर हो जायेंगे।

मैं न चल पाऊँगा, सरकार। आपके खाने का सारा इन्तजाम मेरे ही सिर पर तो है। दूसरे मैं भी कैसे इतनी खड़ी चढ़ाई चढ़ पाऊँगा। देख नहीं रहे, मैं तो आप सबसे ज्यादा जईफ हूँ। सिर्फ गुजर-बसर के लिए इतनी दौड़-धूप करता हूँ। मैं आपके साथ गाइड किये देता हूँ।

वह गाइड हमारे साथ कर देता है। हम चल पड़ते हैं।....अब हम चढ़ाई चढ़ रहे हैं। मित्र काफी ऊपर चढ़ गये हैं। मैं थक कर एक चट्टान पर बैठ जाता हूँ। गाइड मेरे साथ ही है। जब मैं इस प्रकार पसीने-पसीने हो कर रुक जाता हूँ, गाइड अपनी बातों से मुझे बहलाता है, जिससे मैं और थकावट महसूस न करूँ। रुकना, चलना, फिर रुकना, फिर चलना किसी तरह राम-राम करके मैं मंजिल पर पहुँचता हूँ।

मित्र पहले से ही सीढ़ियों पर विराजमान हैं। मैं उनके पास पहुँच कर इस तरह बैठ जाता हूँ, जिस प्रकार पीठ पर भारी बोझ लाद कर चलने वाला कुली बेहद थक जाने पर बीच रास्ते में एकदम से बैठ जाता है। और बैठने पर ही ढंग से साँस ले पाता है—यार, मार डाला इस चढ़ाई ने! सचमुच बहुत ऊँचाई पर हैं यह मंदिर। ये धर्म की ध्वजाएँ इतनी ऊँचाइयों पर ही क्यों फहरायी जाती हैं?

ओंकार बाबू जेब से रूमाल निकाल कर मेरे माथे का पसीना पोंछते हुए कहते हैं—देवता के दर्शन सहज नहीं होते। शरीर को कष्ट देना पड़ता है, मन को किसी एक दिशा में मोड़ना पड़ता है। ऐसी स्थिति में ही असाध्य साध्य बनता है।

मैं तो मनुष्य में ही भगवान देखता हूँ। इंसान के आँसुओं में तुम्हें कभी भगवान की सूरत दिखायी नहीं दी? तुम्हारा भगवान ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर बने इन मंदिरों में ही है।

तुम तो पूरे नास्तिक हो। हम लोगों ने तुम्हें व्यर्थ घसीटा।

भगवान के दर्शन के साथ प्राकृतिक दर्शन का भी अवसर मिलेगा, मेरे यहाँ आने का एक यह भी कारण है।

अच्छा, अब तो तुम्हारी थकावट दूर हो गयी होगी यह मनोरम दृश्य देखकर। चलो, भगवान शंकर के दर्शन करें।

तुम लोग मानोगे नहीं, मुझे चलना ही पड़ेगा—तो चलो।

हम मंदिर में प्रवेश करते हैं। कोई चार फुट ऊँचा होगा वह शिव-लिंग काले पत्थर का चमकदार। फूल कम, पैसे ज्यादा चढ़ाये गये हैं। हमारे पास भी फूल कहाँ थे, हमने भी पैसे चढ़ा दिये—बड़ी श्रद्धा के साथ।

मैं सबसे पहले सीढ़ियाँ उतर आया। और अब मंदिर के सामने के मैदान के एकदम आखिरी छोर पर खड़ा हूँ। मुझसे केवल तीन-चार फुट की दूरी पर ही सैकड़ों फीट गहरे खाई-खंदक हैं, भयंकर ढलान है—खुदा

न खास्ता कोई फिसल जाय तो बोटी तक का पता न चले। श्रीनगर एक-दम गुड़ियों का घर नजर आ रहा है। और डल, डल तो ऐसी लगती है जैसे सूपे में समुद्र भरा हो। शिकारे भौंरे के समान नीले फूल पर धीरे-धीरे सरकते से दिखायी दे रहे हैं। चार चिनार तो आपस में इतने पास खिसक आये हैं कि मात्र उनके बीच बीते भर का फासला रह गया है।

वे दोनों मेरे पास आकर खड़े हो गये। मैं सोमेश्वर बाबू की दूरबीन लेकर फिर वही देखने लगता हूँ जो अभी देख चुका हूँ—जैसे कोई भुलक्कड़ छात्र बार-बार ही पाठ पढ़ रहा हो। जिसे मैं इतनी बार देख कर भी नहीं अघा पा रहा हूँ, उसे उन लोगों ने एक नजर में ही देख लिया। और अब ओंकार बाबू कहते हैं—तुम तो खरे बाबू, नई दुलहिन के चेहरे के समान बार-बार वही-वही देखते रहो। मैं जानता हूँ, तुम्हारी यह प्यास अन्त तक प्यास ही बनी रहेगी। तुम तो कश्मीर की हर वस्तु पर बिना किसी कीमत के बिक गये हो। चलो चलें।

हम लोग अब उतर रहे हैं। चढ़ने जैसी थकावट उतरने में महसूस नहीं होती। हम तीनों एक साथ तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। वे दोनों बहुत आगे निकल जाते हैं। मैं थककर फिर बैठ जाता हूँ। हम लोग अब शहर के बहुत करीब आ गये हैं। अचानक सामने दो सात-आठ वर्ष की छोकरियाँ मेरे पास आ कर हाथ पसार कर एक साथ कहती हैं—साहब, बख्शीश!

मैं दस-दस पैसे उनके हाथों पर रख देता हूँ। जैसे नियामत मिल गयी, इस भाव को लेकर बड़ी तेजी से वे वापस जाती हैं। तभी उनके साथ एक सयानी-सी लड़की सामने आती दिखती है। उसके करीब आने पर मैं देखता हूँ—अरे यह तो मूर्तिमती तरुणाई है, कीचड़ में लिपटी कमल-नाल सी दिखायी दी वह। वह तभी मेरे करीब आ कर उसी मुद्रा में सहज भाव से कहती है—साहब, बख्शीश मिलेगी।

मैं उसे भर नजर देखता हूँ और एक रुपया निकाल कर दे देता हूँ। मेरे मन में आता है कि क्यों न इसका एक स्नैप ले लूँ। जैसे ही मेरा

हाथ कैमरे की ओर बढ़ता है, वह इस तरह जाती है जैसे करेंट छू गया हो। हिरनी की तरह चौकड़ी भरती-सी चली गयी है वह।

कैमरे को क्या उसने सँपेरे की पिटारी समझा, जिसमें बैठा नाग लपक कर कहीं डस न ले, इसलिए प्राण बचा कर भाग गयी—मैं अपने आप बुदबुदाता हूँ।

तभी गाइड बोला—ऐसी बात नहीं है साहब। वह जान-बूझ कर भागी है। यदि आप दस-बीस रुपये खर्च करने को तैयार हो जायें तो चाहे जब मैं उसे आपके सामने ला कर खड़ी कर दूँ—फिर चाहे जिस पाज में उसके स्नैप लीजिए। यदि पेंटिंग का शौक हो तो माडल बनाइये, चाहे जिस कलर में पेंट कीजिये, आड़े-तिरछे, चाहे जैसे ब्रश मारिये—कौन रोकने वाला है?

तुम इसे जानते हो क्या? कब से जानते हो?—मैं उठ खड़ा हुआ और उसके साथ चलने लगा।

हम लोगों से यहाँ का क्या छिपा है, साहब। यहाँ ऐसी औरतों की कमी नहीं है जो घर से काला बुर्का ओढ़ कर निकलती हैं और हर खरीद-दार के पास खुली चाँदनी-सी जा कर बिखर जाती हैं।

मित्रों के पास पहुँचते-पहुँचते बात आयी-गयी हो गयी।

मैं उस दिन बहुत थक गया था। मेरे दोनों साथी सीधे होटल चले गये। मैं ठीक दो बजे हाउस-बोट में पहुँचा। नर्गिस ड्राइंग-रूम का बिखरा हुआ सामान तरतीब से जमाने में मशगूल थी। मेरे अचानक वहाँ पहुँचते ही वह कुछ सहम-सी गयी—हतप्रभ हो गयी, जैसे इम्तहान में नकल करते हुए पकड़ ली गयी हो। दो मिनिट में ही सब ठीक-ठाक जमा कर वह वहाँ से जाने को होती है तभी मैं पूछ बैठता हूँ—तुम्हारे अब्बाजान कहाँ हैं।

'जी, अभी-अभी तो यहाँ थे!

हमारा लंच तैयार है?

जी । अब भी उसकी पलकें ऊपर नहीं उठीं ।

तो जाओ, ले आओ ।

वह उसी तरह आँखों में लाज पिये चली जाती है । मुझे ऐसा महसूस हुआ कि यह क्या, गीत आरम्भ करने के पहले ही प्रथम पंक्ति दिमाग से गायब हो गयी।

तभी अब्दुल रशीद खाना ले कर आ जाता है—बड़ी देर कर दी, साहब ।

बड़ी मुश्किल से मंदिर तक पहुँच पाया । रास्ते में जाने कितनी बार रुक कर आराम करना पड़ा ।

कश्मीर देखने के लिए आपको अभी ऐसी जाने कितनी चढ़ाइयाँ तय करना पड़ेंगी । अभी आपने देखा ही क्या है ?

उसने खाना लगा दिया । मैं खा भी चुका । मेरे मन में अब भी है—शायद काफी की प्याली ले कर आती हो । पर यह क्या, काफी भी अब्दुल रशीद ही लाया है ।

क्यों रशीद, क्या नर्गिस तुम्हारी इकलौती बेटी है ?

अरे नहीं साहब, बहुत बड़ा कुनबा है । इससे बड़ी दो छोकरियों को शादी हो चुकी है । इससे छोटी तीन छोकरियाँ और हैं ।

बड़ी जिम्मेदारी है तुम्हारे सिर पर । कैसे गुजारा होता होगा ? क्या हाउस-बोट तुम्हारा अपना है ?

ऐसा होता तब भी गनीमत थी । इसका मालिक तो बम्बई का एक बहुत बड़ा सेठ है । गर्मियों में वह पूरी फेमिली के साथ आ जाता है या किसी अपने दोस्त को भेज देता है । मेरे हाथ तो बस यही आफ सीजन की कमाई आती है ।—यह कह कर वह जैसे रहा-सहा भी चुक गया । उसकी आँखें शून्य में कुछ खोजने लगीं । कुछ देर रुक कर भरे मन से वह फिर कहने लगा— इस जवान छोकरी ने तो मेरी नींद हराम कर दी है । और साब, इसी सीजन की कमाई से उसका निकाह कर देना है । मैं

क्या निकाह करूँगा, वह ऊपर वाला ही करेगा—यह कहते-कहते उसकी आँखें गोली हो गयीं ।

अल्लाताला की रहमत पर भरोसा रखो । क्यों इस तरह अपना दिल तोड़ते हो ? अच्छा जाओ, तुम भी खाओ-पियो । मैं भी सोऊँगा ।

वह चला गया । मैं बेड-रूम में जा कर अपने बिस्तर पर आ लेटता हूँ । पर मुझे नींद नहीं आती । मेरी आँखों के सामने बार-बार आ कर नर्गिस खड़ी हो जाती है—जितनी सुन्दर है उतनी ही भोली भी—बेचारी गरीब की गाय की तरह किसी भी खूँटे से बाँध दो जायगी ।

मैं जो सोया तो तब उठा जब ओंकार बाबू ने आ कर झकझोरा—अरे उठो यार, कब तक सोते रहोगे ? सारे दिन तो सोये हो । चलो, जल्दी तैयार हो जाओ । आज पिक्चर चलेंगे—कश्मीर की कली देखेंगे ।

मैं आँखें मलते हुए उठ कर बैठ जाता हूँ—मैं पिक्चर-विक्चर कहीं नहीं जाऊँगा । आज की चढ़ाई ने तो मेरे जोड़-जोड़ में दर्द भर दिया है । मैं तो आज आराम से सोऊँगा, तुम लोग जाओ ।

अरे यार, कश्मीर की कली कश्मीर में न देखी तो कहाँ देखोगे ?—सोमेश्वर बाबू ने मजाक के लहजे में कहा ।

जान पड़ता है तुम्हें अभी तक कोई कश्मीर की कली प्रत्यक्ष दिखायी नहीं दी, इसलिए सिनेमा के परदे पर देखने जा रहे हो । मैं तो देख चुका—अब भी मेरे मन की आँखें उसे देख रही हैं ।

तो तुमने अकेले ही क्यों देखा ? हम भी देखते कौन है वह....।

जब भी वह यहाँ आयी, तुम लोग गायब रहे—वैसे केवल दो बार ही तो वह यहाँ आयी है । यदि भाग्य अच्छे होंगे तो तुम लोग भी उसे देख लोगे । मेरा मन तो चाहे जब उसे देख लेता है ।

यार उठो भी, योंही पहेलियाँ न बुझाओ । अब बहुत हो गया । चलो चलें । ओंकार बाबू ने फिर दुहराया ।

सच कहता हूँ; मैं बहुत थका हूँ । न जा सकूँगा ।

अब समझा तुम क्यों नहीं जा रहे हो।
तो तुम भी रुको, क्यों जाते हो ?
—अंत में वे चले जाते हैं।

उनको गये हुए अभी मुश्किल से दस मिनट हुए होंगे कि श्याम आया है। मेरे पास ड्राइंग रूम में बैठते ही पूछता है—कर आये भगवान शंकर के दर्शन ?

हाँ भाई, दर्शन तो ठीक ही है पर यह सच है कि मैं यदि चढ़ाई चढ़ने से जी चुरा लेता तो मन में एक ललक बनी रह जाती।

थके-चूर तो दिखते ही हो। लो इससे सारी थकावट दूर हो जायगी, इसीलिए ले आया—वह जेब से थ्री एक्स का एक निप निकाल कर टेबिल पर रखता है।

मैं कभी-कभार पी लेता हूँ, दोस्तों के आग्रह पर—किन्तु आज तुम्हारा साथ न दे सकूंगा। तुम तो देख ही रहे हो मेरे संगी-साथियों को। प्याज की महक तक से तो नाक सिकोड़ते हैं। फिर दूसरी बू कैसे छिपेगी ? तुम्हारा ठीक है। तुम्हें कौन पूरी जिन्दगी उनके साथ रहना है ? तुम खुशी से पियो।

इसी समय अब्दुल रशीद मेरे लिए चाय ले आया। मैंने उससे कहा—रशीद मियाँ, साहब के लिए काँच का साफ गिलास लाओ और पानी भी।

वह ले आया। श्याम ने निप खोला और ढाल कर पीने लगा। अब्दुल रशीद वहीं पास में खड़ा था। मैंने जैसा उसे देखा था उससे कुछ भिन्न अब्दुल रशीद एक अजीब लहजे में कहता है—अभी तक आप लोगों ने असली कश्मीर देखा ही कहाँ है—यही बाग, डल और नगीन झीलें, झेलम के सात पुल और बहुत से सारे पहाड़—इनको छोड़ कर और देखा ही क्या है ? इसके अलावा भी ऐसा कुछ है जिसे देखना तो

अभी बकाया ही है।

मैंने उसे बीच में ही टोक दिया—क्या मतलब ?

ये नहीं समझ पाये तुम्हारे इशारे,—पर मैं सब कुछ समझ गया हूँ। है तुम्हारी नजर में कोई बढ़िया माल....? बीच में ही श्याम अब्दुल रशीद की ओर देखता हुआ बोल पड़ता है। वह सुरूर में आ रहा है। अब मेरे समझने को भी कुछ बकाया नहीं रह गया। मन में तो उठ रहा था कि श्याम को डपट कर बात यहीं खत्म कर दूँ। उसके बाद मैं सोचने लगा—इस तरह तो श्याम को आधा देख कर ही रह जाना पड़ेगा। क्यों न उसे समूचा देख लिया जाये ? और वह जो अब्दुल रशीद अभी-अभी मेरे सामने प्रकट हुआ है उसकी असलियत जानना भी तो जरूरी है। क्या इसीलिए यह नर्गिस को इस तरह लुका-छिपा कर रखता है कि कीमत चुकाये बिना हर कोई उसे यों ही न देख ले ? तभी तो वह केवल मज़बूरी में ही मेरे सामने लायी गयी। क्या बाप भी इस तरह अपनी बेटियों की अस्मत बेच कर पैसा कमाते हैं और फिर उसी कमाई से उसका विवाह कर दिया करते हैं ? यह ठीक है, गरीबी इंसान से वह सब करवा लेती है, जो उसे कभी किसी कीमत पर भी नहीं करना चाहिए। फिर भी लाख चाहने पर भी ऐसा कहीं हो पाता है ? अभी हमारा आर्थिक ढांचा ऐसा कहाँ बन पाया है कि और कुछ न सही, हम कम से कम एक इंसान की नेक और सही जिन्दगी जी सकें। मुझे अब्दुल रशीद के इस रूप को देख कर जहाँ विस्मय हुआ, वहाँ तरस भी आया उस पर। बेचारी नर्गिस मजबूर बाप की मजबूर बेटी....।

हाँ-हाँ, क्यों नहीं ? तो लाओ—पहले उसका दीदार कराओ। बाद की बाद में देखेंगे। वह बराबर पिये जा रहा है। पर अभी होश में है।

सिर्फ दीदार हासिल करने की फीस पाँच रुपये होगी—अब्दुल रशीद सौदा करने में तेज मालूम पड़ता है।

तो लो ये पाँच रुपये—। वह पाँच रुपये इस तरह फेंक देता है जैसे

कोई कुत्ते के सामने जूठे टुकड़े ।

अब्दुल रशीद रुपये ले कर चला जाता है । अब मैं श्याम से कहता हूँ—क्यों भाई, मजे में तो हो कि तारे नजर आने लगे ? तुम यह सब क्या कर रहे हो ?

आप चुपचाप तमाशा देखते जाइये । अभी आप अपनी आँखों से देख लेंगे कि यहाँ रूप जिस तरह अपने आपको गली-गली बेचता फिरता है । जिन्दगी की यह भी एक असलियत है ।

पर इस सड़ांध में तुम क्यों अपना मुँह डाल रहे हो ? मुझको उस पर गुस्सा आ रहा था । पर अब क्या हो सकता है ? तलवार म्यान से निकल चुकी है, वह जा चुका ।

मैंने शादी नहीं की । यदि यह सड़ांध न हो तो मेरी सेक्स की भूख कैसे बुझे ? मैं तो औरत को केवल औरत देखता हूँ । जैसे होटल होटल है, उसी तरह औरत औरत है भूख की आग होटल में खाने से बुझती है और घर के खाने से भी । फिर होटल तो सब के लिए सब समय खुला रहता है....।

होटल और घर में फर्क है । यदि फर्क न होता तो लोग घर बसाते ही क्यों—सभी होटल में न खाने लगते ?

जहाँ तक खाने की बात है, मुझे दोनों में कोई अन्तर दिखायी नहीं देता ।

घर के भोजन में अपनत्व की जो मिठास है, वह होटल के भोजन में कहाँ ? यह परायापन अपनत्व जैसी तृप्ति कहाँ दे पाता है ?

भूखा यह सब नहीं देखता । वह तो किसी तरह भूल की ज्वाला बुझाना चाहता है । मसल मशहूर है—भूख न जाने जूठा भात, इश्क न जाने जात-कुजात ।

तुम तो यार पूरे सिनिक हो—तुम्हें शायद चढ़ ज्यादा गयी है ।

इसी समय अब्दुल रशीद के पीछे-पीछे स्याह लबादे में एक औरत

आती है । वह उसे सामने की कुर्सी पर बैठा देता है । श्याम के लिए तो वह मरी मछली है । पर मैं बड़ी अजीब स्थिति में हूँ । मन में कुछ कचोटता है—इसका शारीरिक गठन ऊपर से एकदम नर्गिस जैसा दिखायी देता है, वही छरहरी देह । और जूतियों के भीतर से झलक मारती पाँवों की गोराई साफ कह रही है कि बहुत मुमकिन है, नर्गिस ही हो । रंग में कोई फर्क नहीं । वह अब भी गुमसुम बैठी है ।

उसे आये पाँच मिनिट हो चुके हैं, पर वह अब भी गुमसुम बैठी है—जैसे गरीब की इज्जत उघरी रहने के बाद भी उघरना नहीं चाह रही है । तभी श्याम जोर से हँस कर कहता है—बुरके में छिपी यह जवानी कब तक इस तरह खामोश बैठी रहेगी ? टटोलने का नहीं तो कम से कम देखने का मौका तो दे । दीदार हासिल करने की फीस पहले ही दी जा चुकी है ।

इस तरह कब तक बैठी रहेगी ? बुरका हटा भी दे न—अब्दुल रशीद बड़े हक से कहता है ।

झिझक अब भी बनी है । ऐसा लगता है कि खेलना सीख रही है, खेलना जानती नहीं । और यह खेल उसकी मर्जी का खेल भी कहाँ है ? घर-आँगन में चपेटा खेलने वाली को बैडमिंटन ग्राउंड में प्रैक्टिस करने भेजा है, उसकी किस्मत ने । इसमें माँ की मर्जी भी है, यह कैसे कहा जा सकता है—मेरे मन में यह द्वन्द्व मचा हुआ था, तभी एकदम से वह अपना नकाब उलट देती हैं । मेरी दृष्टि उसके चेहरे पर टिक जाती है और मेरे लिए वह चेहरा पहिचाना लगता है—अरे, यह तो वही गुलाब है जो कैमरे की सूरत देखते ही मुरझा गया था । बिलकुल वही है जो मेरा कैमरा देखते ही हिरनी की तरह चौकड़ी भरती भाग खड़ी हुई थी ।

• •

ग्रोर वह खिलखिला कर हँस पड़ी

गुड मार्निंग मिस्टर शेखर। देखो, हम ग्रापके वास्ते कितना खूब-सूरत फूल लाया है। कल से रोज लायेगा। समझा।—यह कहते हुए सिस्टर ब्राउन ने उसके सिरहाने, तकिये के पास, बेला की बहुत सारी ग्रधखिली कलियाँ बिखेर दीं। शेखर के ग्रोठों से एक हल्की मुसकान की लहर टकरा कर तुरन्त लौट गयी। वह पिछले हफ्ते ही पेइंग-वार्ड में भरती हुग्रा है। डाक्टरों का कहना है कि फेफड़े में खराबी ग्रा गयी है। बीमारी तो खतरनाक है किन्तु चिन्ता की कोई बात नहीं है।

रात को सोया ? नींद ग्राया ? ग्राप हमेशा डिपरेस्ट रहता है, कुछ न कुछ सोचा करता है। इस वास्ते नींद ग्राना नहीं माँगता। घबड़ाना नहीं। जल्दी ठीक हो जायगा।....इन स्नेहपूर्ण शब्दों के साथ उसने शेखर की नब्ज ग्रपने हाथ में पकड़ी ग्रौर ग्राँखें घड़ी के काँटों पर गड़ा दीं। ग्रो गुड—नार्मल—उसके ग्रोठों से हँसी चू पड़ी, जैसे दुबारा बेला की कलियाँ बिखर गयीं। शेखर की ग्राँखें उसकी बड़ी नीली झील-सी

ग्राँखों में डूब गयीं।

वह रात को ठीक से सोया नहीं था। उसके बायें पैर की रान में दर्द है। जहाँ इंजेक्शन दिया गया था वहाँ कुछ गाँठ-सी बँध गयी है जो भीतर ही भीतर टीसती है, दुखती है। जब कोई किसी घाव की मलहम-पट्टी करने लगता है तो दर्द ग्रौर बढ़ गया है—ऐसा महसूस होता है। शेखर को भी ऐसी ही कुछ ग्रनुभूति हुई ग्रौर ग्राखिर उसके मुँह से निकल ही गया—सिस्टर, ग्रापने जहाँ इंजेक्शन दिया था वहाँ बड़ा दर्द है। फोड़ा-सा उठ रहा है।

ग्रभी देखता है—चादर हटाकर वह रान के उस हिस्से को टटोलती है। शेखर को उसके हाथ का स्पर्श बड़ा स्निग्ध ग्रौर ठंडा लगता है। उसके सारे शरीर में हल्की-सी फुरहरी उठती है ग्रौर उसी क्षण मिट भी जाती है।

कल हाट वाटर-ब्रैग से सिकाई किया था ? ग्राज हम खुद सेंकेगा। ग्रापके वास्ते बाजार से एक ग्राइंटमेंट मँगायेगा। इंजेक्शन के फौरन बाद उसको रब करने से ये शिकायत नहीं होगा।—वह फिर हँस दी।

सिस्टर, ग्राप क्यों मँगायेंगी ? एक चिट पर उस मलहम का नाम लिख दें। हम मँगवा लेंगे।

नो, हम लायेगा। यह कहकर वह चली गयी। उसने ग्रागे ग्रौर कुछ कहने का ग्रवसर ही कहाँ दिया। शेखर ग्रभी तक नहीं समझ पा रहा है कि ग्राखिर यह एंग्लो-इंडियन स्टाफ नर्स उस पर ग्रपना इतना ग्रधिकार क्यों जताती है। इसके पहले तो उसने इसकी सूरत तक नहीं देखी थी। प्रारम्भ से ही इसका व्यवहार साधारण नर्सों जैसा नहीं रहा है। ग्रौर इधर एक हफ्ते में तो यह ऐसी घुल-मिल गयी है कि दोनों के बीच ग्रौपचारिकता के लिए कोई स्थान हो नहीं रह गया है।

शेखर के मन के ग्रांगन में वह ग्रब भी खड़ी-खड़ी हँस रही है—कितनी ममतामयी है। जब बुलाग्रो तब दौड़ी ग्राती है। हाथों पर रखती

है । स्वयं आकर दवा खिलाती है । किसी दूसरी नर्स को मेरा कोई काम नहीं करने देती । जैसे मैं मात्र उसकी ही धरोहर हूँ । उसने मुझको स्नेह के रेशमी धागों में बाँध लिया है । मुझको ही क्यों, मेरी पत्नी शीला के मन में भी रेशमी गाँठ लगा दी है इसलिए वह भी सेवा-सुश्रूषा की ओर से निश्चिन्त हो गयी है ।

शेखर कहीं खो गया था । उसकी यह जाग्रत-समाधि तब भंग हुई जब शीला ने कहा—क्या सोच रहे हो ? हमेशा जाने किस उधेड़-बुन में पड़े रहते हो । खाँसी भी अब कम हो गयी है । नींद भी आने लगी है । जल्दी ठीक हो जाओगे । अच्छे से अच्छे डाक्टर तुम्हारा इलाज कर रहे हैं ।—काफी बनाऊँ ?

शीला, मैं अपने बारे में नहीं, सिस्टर ब्राउन के सम्बन्ध में सोच रहा था । कितनी परवाह करती है मेरी—मुझे हमेशा खुश देखने के लिए क्या कुछ कहीं करती । देखो न, कल दोपहर दो घंटे मेरे साथ ताश खेलती रही । यदि उस समय कोई डाक्टर आ जाता अथवा कोई मैट्रन के कान फूंक देता तो लेने के देने पड़ जाते । कैफियत तो दनी ही पड़ती, बदनामी होती तो अलग । मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण उस पर किसी की अँगुली उठे ।

तुम व्यर्थ की चिन्ता छोड़ो । मैं उसे कल अकेले में समझा दूँगी । वैसे अपना भला-बुरा खुद न समझती हो ऐसी नादान नहीं है वह । अच्छा, मैं काफी बनाती हूँ ।

शीला स्टोव जला कर काफी बनाने लगी ।

उस दिन सिस्टर ब्राउन जब ड्यूटी पर आयी तो उसके हाथ में स्टेनलेस स्टील का एक डब्बा भी था । वह सीधी रूम नं० ७ में पहुँचती है । देखती है कि शेखर अपने दोनों हाथ सिर के पीछे दबाये, आँखें बन्द किये, चुपचाप पड़ा है । शायद उसे झपकी आ गयी है, कमरे

में वह अकेला है । वह दबे पाँव उसके निकट पहुँचती है । धीरे से उसकी ठुड्डी हिला कर कहती है—आप सो रहा है । अब दिन को भी नींद आने लगा ।

शेखर की आँख खुल गयी । वह हड़बड़ा कर उठ बैठा । एकबारगी ही उसकी दृष्टि सिस्टर ब्राउन के ताजे गुलाब से खिले चेहरे पर जा टकरायी—ओह, आप आ गयीं सिस्टर आज मार्निंग आफ् था आपका । यह संडे तो सचमुच मुझे बहुत खलता है । आप छुट्टी मनाती हैं और मेरी जान पर आती है । दूसरी सिस्टर से इंजेक्शन लेना पड़ता है । आप कब इंजेक्शन लगा देती हैं, पता ही नहीं चलता—यह कहते हुए शेखर ने उसका हाथ पकड़कर अपने वक्ष पर रख लिया । वह कुछ नहीं बोली । चुपचाप उसे देखती रही । कुछ क्षणों के बाद आदतन हँसती हुई उसने कहा—आज अकेला कैसा ? शीला सिस्टर कहाँ गया ? उसने अपना हाथ जहाँ का तहाँ रहने दिया, हटाया नहीं । और वह वहीं, पलंग के पास रखे स्टूल पर बैठ गयी ।

आज हम लोगों का कोई त्यौहार है—फेस्टिवल है । आज के दिन हिन्दू औरतें अपने बच्चों की खुशहाली के लिए फास्ट करती हैं । शीला पूजा करने घर गयी है । खाना लेकर आती ही होगी ।—यह कह चुकने के बाद शेखर उसकी अँगुलियों से खेलने लगा ।

आप बिलकुल बच्चा है शेखर बाबू । यह सब क्या कर रहा है—छोड़ो इसको ।....देखो, हम आपके लिए बढ़िया फिश-करी लाया है—बाम्बे का पामफेल्ट मछली का करी । उसने डब्बा खोल कर स्टूल पर रख दिया और खुद कुर्सी पर जा बैठी ।

सिस्टर, आप मेरा कितना ख्याल रखती हैं । आप मुझे इतना अधिक क्यों पसन्द करती हैं, आखिर क्यों ? डब्बा बन्द कर दीजिए । खाने के साथ खाऊँगा ।

शेखर बाबू, नर्स का यह सबसे बड़ा ड्यूटी है कि वो अपने मरीज

को खुश रक्खे । हम आपको ज्यादा से ज्यादा खुश रखता है तो कौन-सा कमाल करता है । अच्छा, अब हम जायगा । दूसरे मरीजों को देखेगा ।

उसका जाना था कि शीला आ गयी । वह साड़ी के छोर से माथे का पसीना पोंछती हुई बोली—आज बड़ी देर हो गयी । ड्राइवर अभी तक खाना खाकर नहीं लौटा था । और ज्यादा देर न हो इसलिए मैं रिक्शे में ही आ गयी । लो, उठो । खाना खाओ । अरे, इस डिब्बे में क्या है ? किसका डिब्बा है ? क्या कुछ बाजार से खाने के लिए मँगवाया था ?

नहीं शोला, सिस्टर ब्राउन मेरे लिए मछली लायी है । उसे जाने क्या-क्या सूझता रहता है । उससे किसने कहा था कि वह मेरे लिए मछली लावे । आज उसका मार्निंग आफ था । किसी ने उसे लंच पर बुलाया होगा । वहाँ मछली बनी होगी सो मेरे लिए भी माँग लायी । सचमुच बड़ी अजीब है यह । तुम्हें याद है न, एक दिन इसी तरह खुद हो कर मेरे लिए एक बड़ी-सी केडबरी-चाकलेट आयी थी—यह कहते हुए वह जोर से हँस पड़ता है ।

अच्छा, अब बन्द भी करो सिस्टर का गुण-गान । चलो, खाना खाओ । शीला ने अधिकारपूर्वक शेखर के दोनों हाथ पकड़कर उसे उठाया और पलंग पर बैठा दिया । शेखर चुपचाप खाना खाने लगा ।

शेखर अब पहले से बहुत अच्छा है । उसे चलने-फिरने की भी इजाजत मिल गयी है । उससे रोज शाम को बगीचे में टहलने के लिए भी कहा गया है । सूर्य की अंतिम किरणें विदा हो रही हैं । सुरमई साँझ को कुछ क्षणों के ही बाद अँधेरा अपनी बाँहों में समेट लेगा । सिस्टर ब्राउन चाय पीकर नर्सेज-क्वार्टर से लौट रही थी । अचानक उसकी दृष्टि शेखर पर जा पड़ी । उसने देखा, वह बगीचे में टहल रहा है । गुलाबी ठंड है, और उसके बदन पर कोई भी गरम कपड़ा नहीं है । वह शेखर के कमरे से उसका गरम कोट लाकर सीधी वहाँ पहुँचती है । उसके हाँथों में कोट

को बाँहें डालती जाती है और बड़बड़ाती जाती है—आप जानता नहीं आप चेस्ट का मरीज है । अभी ठन्ड लग जायगा तो फिर रोयेंगा । शेखर मन में अपनी गलती कबूल करता है । वह कुछ कहे कि इसके पहले ही वह वहाँ से चल देती है ।

शेखर मन भारी हो गया है । अब वह एक क्षण भी वहाँ नहीं रुक सकता । उसने चलने-चलते एक बड़ा-सा गुलाब तोड़ा । इसे वह सिस्टर ब्राउन को देगा । उसे मनायेगा सिस्टर, अब फिर कभी मैं ऐसी लापरवाही नहीं करूँगा । शाम को गरम सूट पहनकर ही रूम से निकलूंगा । वह ड्यूटी-रूम में पहुँचता है । सिस्टर ब्राउन का मुँह अब भी फूला है । गुस्से में वह और भी अधिक सुन्दर लग रही है । वह अपनी कुर्सी से उठ कर दूसरी कुर्सी पर जा बैठती है और उसी प्रकार सिर नीचा किए किसी रजिस्टर की खाना-पूरी करती रहती है । शेखर से बात करना तो दूर रहा, उसकी ओर नजर उठाकर तक नहीं देखती । शेखर बैठकर सोचने लगता है—पारा अभी तक चढ़ा हुआ है । इससे अभी कुछ भी बोलना ठीक न होगा । उसने गुलाब का वह फूल टेबिल पर रख दिया । सिस्टर ब्राउन के गाल भी तो गुलाब जैसे ही हैं । वह कब तक इस तरह गुमसुम बैठा रहता । आखिर बोल ही पड़ा—आप नाराज हो गयीं सिस्टर । आप का नाराज होना जायज है । अब फिर कभी ऐसी गलती न होगी ।

हम अभी शीला सिस्टर से बोलेगा कि आपका हसबेंड अस्पताल छोड़ना नहीं माँगता । अभी जरा अच्छा हुआ है फिर बीमार होना माँगता । इतना कहकर उसने वार्ड-बाय को दो कप काफी बनाने का आदेश दिया ।

सिस्टर ब्राउन ने गुलाब का वह फूल उठाकर कैप के नीचे अपने बालों में लगा लिया । वह अब तक शेखर से प्रत्यक्ष बोली नहीं है पर कनखियों से शेखर के चेहरे का उतार-चढ़ाव बराबर देखती जा रही है । वह सचमुच उदास हो गया है । वह उसकी उदासी दूर करने के लिए ही

तो अब तक अपनी सीमा रेखा लाँघ ऐसा कुछ करती रही है जो एक नर्स को नहीं करना चाहिए। अब वह और अधिक देर तक नाराज नहीं रहेगी—शेखर बाबू; नेक्स्ट संडे को हम आपको चिकन खिलायेगा। उस दिन हमारा बर्थ-डे है। हम छुट्टी मनाएगा। पर आपके लंच टाइम पर जरूर आएगा।

सच सिस्टर। यह आपने अच्छा बता दिया। आपका बर्थ-डे आने के पहले ही मैं आपको एक साड़ी भेंट करूँगा।

ना बाबा, ना। हम साड़ी का क्या करेगा हमने कभी साड़ी नहीं पहिना। हमको तो साड़ी पहिनना भी नहीं आता।....लो, वो काफी आ गया। काफी पियो और अपने रूम को जाओ। देखता नहीं ठन्ड बढ़ गया है।

शेखर काफी पीकर अपने रूम में आ गया है किन्तु उसका मन तो अब भी सिस्टर ब्राउन के पास ही है—अभी तक तो मैंने इसे नर्सिग ड्रेस में ही देखा है। साड़ी में यह सचमुच बहुत जँचेगी। किस रंग की साड़ी इसको फबेगी ? क्यों न इससे इसका फेवरिट कलर पूछकर ही खरीदी जावे। यह सब शीला पर छोड़ दूँगा। मैं क्यों व्यर्थ माथा-पच्ची करूँ।

दूसरे दिन ही शीला हल्के नीले रंग की एक रेशमी साड़ी ले आयी। सिस्टर ब्राउन के लाख मना करने पर भी शीला ने अंत में राजी कर ही लिया—बड़ा अच्छा साड़ी है। पहले तो साड़ी पहनना सीखेगा तब इसको पहिनेगा—जरूर पहिनेगा।

दूसरे दिन शेखर देखता है कि सिस्टर ब्राउन बेबी को अपने हाथ से नया गरम स्वेटर पहिना रही है। बहुत से कीमती खिलौने भी वह ले आयी है। जितने की साड़ी नहीं थी उससे कहीं ज्यादा उसने खर्च कर दिया। यह सब उसे अच्छा नहीं लगा। मगर इस सम्बन्ध में कुछ कहना भी उसने उचित नहीं समझा। पर शीला ने आखिर टोक ही दिया—सिस्टर, आपने साड़ी की दूनी कीमत चुका दी। इतना खर्च करने की

क्या जरूरत थी।

हमारा भी तो बेबी है। हम उसको लाया है। आपको इससे मतलब ?

तभी शेखर ने यह कह कर प्रसंग बदल दिया—सिस्टर, अच्छा यह बतलाइए कि आप साड़ी पहिनकर कब आवेंगी। मैं आपको साड़ी में देखना चाहता हूँ।

वह बिना कुछ उत्तर दिये चली गयी।

एक दिन शेखर के पास उसका एक ईसाई मित्र अल्बर्ट बैठा था। तभी सिस्टर ब्राउन फूलों का एक बहुत सुन्दर गुलदस्ता ले कर वहाँ पहुँचती है। उसे अधिकारपूर्वक टेबिल पर फ्लावर-पाट में सजाकर रख देती है। इसके बाद शेखर के निकट आ कर कहती है—शेखर बाबू, आज मार्निंग में हमको बगीचे में एक भी फूल नहीं मिला था। इसी वजह से हम फूल नहीं लाया था। यह बाजार से मँगवाया, अब तो खुश है।

आप तो यहाँ प्रतिदिन फूल लाकर देती हैं मुझे। घर में कौन ला कर देगा ? यह कहते हुए शेखर ने अल्बर्ट की ओर देखा। वह सिस्टर ब्राउन को घूरकर देख रहा था।

घर में शीला सिस्टर फूल देगा—हम कैसे आना सकता—यह संक्षिप्त-सा उत्तर देकर वह चली गयी।

उसके जाने के तत्काल बाद ही अल्बर्ट बोला—'शेखर, इस चुड़ैल से बच कर रहना—शी इज ए ब्लडी विच। अपने मरीजों को यह ऐसा ट्रैप करती है कि उससे बच निकलना बड़ा मुश्किल होता है। जाने कितनो को तबाह कर चुकी है।

शेखर को लग रहा था कि वह उसे बीच में ही टोक दे। अस्पताल में भर्ती हुए उसे पूरे पाँच माह हो चुके हैं। इस बीच कितने लोग उससे मिलने नहीं आये। यह पहला व्यक्ति है जिसने सिस्टर ब्राउन की इस तरह जी खोल कर बुराई की। मन में तो आ रहा था कि बुरी तरह

फटकार दे। उसने क्रोध का घूंट पी कर तुरन्त प्रतिवाद किया—पर मैंने तो इसमें ऐसा कुछ नहीं पाया।

मैं फिर कहता हूँ कि एक दिन तुम खुद मेरी बात का समर्थन करोगे।

छोड़ो भी यार—और कुछ बात करो।

अल्बर्ट की बात साफ काट देने से उसका मूड खराब हो गया। वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ और जाते-जाते कह गया—अगले हफ्ते तो तुम हास्पिटल से डिस्चार्च ले ही रहे हो—अब घर पर ही भेंट होगी।

शेखर कुछ गम्भीर हो गया। उसके मन में जाने क्या-क्या उठने लगा—जितने मुँह उतनी बातें। कौन किसका मुँह बन्द कर पाता है। हर इंसान अपने एक खास चश्मे से दुनिया को देखता है। किससे क्या कहा जाये—अपना-अपना मन है, अपनी-अपनी आँखें।

आज सिस्टर ब्राउन का जन्म-दिन है। उसकी यह कौन-सी वर्ष-गाँठ है, न इसका शेखर को पता है और न शीला को ही। दोनों सवेरे से अब तक कई बार बिना किसी प्रसंग के ही उसकी चर्चा कर चुके है। शीला ने तो उसका मुँह मीठा करने के लिए राज-भोग से बढ़िया मिठाई भी मँगवा रखी है।

ठीक एक बजे सिस्टर ब्राउन हाथ में टिफिन कैरियर लिये कमरे में दाखिल होती है। शीला और शेखर उसे देख कर ठगे-से रह जाते हैं। दो क्षण तक तो उसे पहिचानना भी मुश्किल हो गया। उसे देख कर भला कौन कहेगा कि यह वही मिस ब्राउन हैं। आसमानी रेशमी साड़ी ने उसके सौन्दर्य में चार चाँद लगा दिये हैं। उसने साड़ी से मैच करता हुआ स्लीवलेस ब्लाउज भी पहिना है। माथे पर गोल लाल बिन्दी लगा लेने से तो वह सचमुच भारतीय तरुणी ही मालूम होती है।

हम दोनों आपको बधाई देते हैं—हैपी बर्थ-डे टु यू। शेखर ने उसका

हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा।

आज हम इंडियन ड्रेस में हैं। हाथ नहीं मिलायेगा—यह कह कर उसने तुरन्त अपना हाथ छुड़ा लिया और हाथ जोड़ कर हँसती हुई बोली—न मा स्ते शेखर को यह बहुत भला लगा।

आइये, अब मुँह मीठा कीजिये।—शीला ने कई प्रकार की मिठाइयों से भरी प्लेट उसके सामने रखते हुए कहा।

हम अकेला नहीं खायेगा। आप लोगों के साथ खायेगा।

उसने टिफिन खोला। चिकन-करी, पूड़ी, पुलाव, चटनी, सलाद—पूरा खाना था। तीनों ने बड़े प्रेम से भोजन किया। शीला ने तो खुद अपने हाथ से उसे मिठाई खिलायी।

शेखर ने आज कोई छेड़छाड़ नहीं की। जी भर उसे देखता रहा। उसके मन में एक पल को यह विचार अवश्य आया—क्या यह रूप की बदली बिन बरसे यों ही तिरोहित हो जायगी। क्या यह सदा असमर्पित ही रहेगी। तभी शीला ने चुटकी ली—सिस्टर, आज जब आपने अपने आप को आइने में देखा होगा तो खुद अपने पर रीझ गयी होंगी। देखा, कितनी अच्छी लगती हैं आप साड़ी में।

आप मुझे बना रहा है शीला सिस्टर। आप भी मेरा मजाक करता है—यह कहती हुई वह अट्टहास कर उठी। और उसकी वह हँसी बहुत देर तक कमरे में गूँजती रही।

अब हम जायेगा। आज पिक्चर का प्रोग्राम है। कभी आप लोगों के साथ भी पिक्चर चलेगा। वह मुसकाती हुई चली गयी। आज उसकी मुसकान के फूलों में जाने कितना अनुराग भरा था।

दूसरे दिन जब मैट्रन राउंड पर आयी तो तनिक तमक कर बोली—मिस्टर शेखर, आपने सिस्टर ब्राउन को सिविलियन ड्रेस में इधर आने को क्यों बोला ? आप नहीं जानता—कोई नर्स आफ ड्यूटी में किसी भी

मरीज के पास नहीं जा सकता। हमने आज रोल-काल पर सब नर्सेज लोगों के सामने उसे खूब डाँटा और पाँच रुपया फाइन भी किया।

शेखर को काटो तो खून नहीं। उसे बड़ा झटका लगा। अंत में सँभलते हुए उसने बड़ी नम्रता से केवल इतना कहा—मदर, गलती हो गयी—आई एम सो सारी।

मैट्रन कुछ नहीं बोली। मुँह फुलाये ही चली गयी। शेखर अपने आप बुदबुदाता रहा—मैट्रन खुद भी एंग्लो-इंडियन है, फिर भी उसने कोई लिहाज नहीं किया। सब के सामने उसकी इज्जत उतार दी। वह सीनियर स्टाफ नर्स है, इसका तो कुछ ख्याल करना था। यदि मैं उससे साड़ी पहिनने की जिद न करता तो कभी यह मौका न आता। मेरे कारण ही उसे यह अपमान सहना पड़ा—केवल मेरे कारण।

शेखर अपने आपको बराबर कुरेदता जा रहा है—इतना सब कुछ हो गया पर उसके चेहरे पर एक शिकन तक नहीं—जैसे कुछ हुआ ही नहीं। यदि मैट्रन उसकी शिकायत न करती तो मुझे कुछ भी मालूम न होता। मैं नहीं समझता था कि बात इतना आगे बढ़ गयी है। इतनी बड़ी घटना घट चुकी और वह अब तक अपने ओंठ सिये है। उसमें कहीं कोई बदलाहट नहीं है—वही पहले जैसी हँसी, वही प्यार भरी डांट-डपट सब कुछ वही। कहीं कुछ भी नहीं बदला है।

इसी समय सिस्टर ब्राउन आती है। सुराही से ग्लास में पानी निकाल कर शेखर के पास पहुँचती है और उसी पुराने लहजे में कहती है—दवा। उसे मालूम है कि शेखर खुद अपने हाथ से कभी दवा नहीं खाता। उसने अबोध बच्चे की तरह मुँह खोल दिया। वह दो गोलियां खिलाती है। पानी पिलाती है। इसके बाद ब्लाउज के भीतर से साफ धुला रूमाल निकाल कर उसके ओंठ पोंछ देती है। कल से आपको खुद ही दवा खाना पड़ेगा, शेखर बाबू।

यह क्यों सिस्टर ?

हमारा ड्यूटी चेंज हो रहा है। मेट्रन हमको जनरल वार्ड भेजना माँगता।

तो फिर मैं भी कल हास्पिटल से डिस्चार्ज ले लूँगा।

नो नो, शेखर बाबू। ऐसा कभी मत करना। अब तो आप अच्छा हो गया है। डाक्टर खुद आपको जल्दी डिस्चार्ज कर देगा।

सिस्टर, मैं बहुत दिन से सोच रहा था कि आप से एक बात पूछूँ। आप की पर्सनल लाइफ की बात। आप बुरा न मानें तो पूछूँ। शेखर आज जान-बूझ कर औपचारिकता का नाटक कर रहा था।

पूछो बाबा, क्या पूछना माँगता।

आपने कभी किसी से प्यार किया है—

आफ कोर्स, क्यों नहीं। केप्टिन वटरफील्ड हमारा बाय-फ्रेन्ड है। हम उसके साथ पिक्चर जाता है। डांस करता है। वो हमको पिकनिक पर भी ले जाता है। हम उसको लव करता। इतना कहते हुए वह खिलखिला कर हँस पड़ी और शेखर उसकी इस खिलखिलाहट में डूब गया।

● ●

मिस

मिस

अंग्रेजी के दो अक्षरों के इस मिस शब्द से मुझे अब चिढ़ उठती है। चिढ़ ही क्यों, नफरत होने लगी है। मेरा वश चले तो संसार की सारी डिक्शनरियों से इसे हटवा दूँ। कोई इस पर गाढ़ी काली स्याही क्यों नहीं फेर देता ? न सही स्याही, तेज ब्लेड से ही छील कर क्यों नहीं साफ कर देता....।

और एक डिसूजा है, जो हमेशा मिस ही बनी रहना चाहती है। अभी, उस दिन की ही तो बात है। बास के प्यून ने उससे आ कर कहा था—मेम साहब।

उसके मुँह के शब्द मुँह में ही थे कि वह बरस पड़ी थी—तुमसे कितनी बार बोला, हमको मेस साहब मत बोलो। जब देखो तब मेम साहब की ही रट लगाये रहता है। इडीयट कहीं का....।

इसके बाद स्वयं बुदबुदा उठा था—मेम साहब हो कर किसी एक की

पर्सनल प्रापर्टी बनना है क्या ?

डिसूजा मेरे पास ही बैठती है। मैं उसके आड़े नहीं आती। जाने क्यों मुझसे ऐंठी-ऐंठी-सी रहती है, मुकरी-मुकरी-सी। रिजर्व रहती है। बहुत कम बोलती है मुझसे। मैंने भी उससे अपनापा जोड़ने की कोशिश नहीं की। काम से काम रखती हूँ। नपे-तुले शब्दों में बात करती हूँ। लेकिन उस दिन मेरे ओठों पर आते-आते रह ही गया—इस तरह चोरी-चोरी कब तक जिस्म बेचती रहोगी ? लुंज-पुंज हो जाने पर कौन पूछेगा ? ऐसी अच्छी-भली तो है, शादी क्यों नहीं कर लेती।

शादी। यह ठीक ही हुआ जो मैं मन की बात मन में ही पी गयी। उल्टे वही मुझसे कह उठती—मेरी शादी से आपका क्या वास्ता ? आप भी तो अब तक कुंवारी ही हैं। आपने शादी क्यों नहीं की ?

कामिनी—कैसा चुन कर नाम रखा गया है मेरा। तीन अक्षरों का यह नाम कामिनी सचमुच बहुत प्यारा है। बड़ा मीठा है। मन ललकता है, कोई इसमें और मिठास घोल कर अधिकारपूर्वक कहे—कामिनी। मात्र चाहने से क्या होता है। यों होने को बहुत कुछ हो भी सकता है। मैं डिसूजा से देखने-सुनने में कोई बुरी नहीं। बीस ही उतरूँगी। पर इस सब के लिए मन राजी नहीं होता। कुछ सलोना-सा उठ कर भीतर ही दबा रह जाता है। मैं किसी एक की ही पर्सनल प्रापर्टी बनूंगी—सात भाँवरों वाले स्वामी की। शिव की गोद में उमा बन कर बैठूंगी मैं।

सिम्पलेक्स कम्पनी के मैनेजिंग डायरेक्टर मेरे पिता के दोस्त हैं। कालेज में सहपाठी थे। वही मेरे बास हैं। डिसूजा के भी। जाने कितनों के। बहुत बड़ा कारखाना है उनका।

मैंने उसी दिन ड्यूटी ज्वाइन की थी। बास ने मेरे साथ डिसूजा को भी अपने रूम में बुलवाया था। सामने की दो कुर्सियों पर बैठ गयी थीं हम। पास-पास औपचारिकता के बाद उन्होंने इने-गिने शब्दों में मुझे मेरा

काम समझाया। इसके बाद चश्मा उतारकर अपनी नंगी आँखों से हमें निहारने लगे। निहारने क्या लगे, जिस्म की नाप-जोख करने लगे, दो-तीन मिनट तक कुछ बोले ही नहीं—केवल देखते ही रहे, शायद फैसला कर लेना चाहते थे कि आखिर हम दोनों में ज्यादा स्वीट कौन है। फैसला करने का उन्हें अधिकार है। बास ही है, डिसूजा पहले से ही उनकी मुँह-लगी है। उसने आँखों में आँखें डाल दीं। घुल-घुल कर बातें करने लगी, मेरी पलकें झुक गयीं, मेज पर बिछे शीशे पर मेरी आँखें अपने आप ठहर गयीं। इसका लाभ भी मिला मुझे। उस साफ-सुथरे शीशे पर मैंने अपने बास का पूरा नक्शा देख लिया, आदमी की जात अच्छी तरह समझ गयी, मैं जल्दी से जल्दी वहाँ से उठ आना चाहती थी—आज मुझे क्या करना है, कोई जरूरी....।

आप जाइए मिस शर्मा; मैं बुलवा लूँगा।

मैं जैसी गयी थी, वैसी ही लौट आयी, लेकिन तब से आज तक मुझे यही एहसास होता है कि जैसी गयी थी, वैसी कहाँ लौटी, देह से कफन लपेट दिया है किसी ने। मेरे सामने प्रतिदिन पाँच रुपये की ताजी हरी घास डाली जाती है, किसी दिन भी अस्मत के गले पर छुरी चल सकती है।

शाम को घर लौटने पर माँ ने स्नेह-गंगा में नहला दिया। तुरन्त चाय बनाकर ले आयी—ले बेटी, चाय पी ले। कैसी थकी-हारी-सी दिखायी दे रही है। क्या बहुत ज्यादा काम रहता है ?

नहीं माँ, जम कर बैठने की आदत नहीं है न। बैठी-बैठी ही थक गयी।

धीरे-धीरे आदत पड़ जायगी बेटी।

हाँ माँ, धीरे-धीरे आदत पड़ जायगी।

तभी बापू हाथ में बड़ा-सा झोला लटकाये बाजार से लौटे, जोर-जोर से हाँफ रहे थे। मैंने तुरन्त उठ कर थैला थामा, अपने पास ही खाट पर

बैठा लिया, मैंने उनके कन्धे पर अपना सिर रख दिया, उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहने लगती हूँ—आप कल से बाजार नहीं जायेंगे, किसी दिन बीच सड़क में ही लुढ़क गये तो सब धरा रह जायगा, दफ्तर से लौटने के बाद मैं ही चली जाया करूँगी बाजार, सबेरे तो नहा-धोकर तैयार होते-होते दस बज जाते हैं।

दफ्तर से थकी-माँदी लौटेगी मेरी कम्मो—यही सोचकर चला गया था बेटी। कल से नहीं जाऊँगा, बहुत कमजोर हो गया हूँ, यह कहते-कहते उन्होंने मेरा सिर गोद में ले लिया। बालों पर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगे, इस तरह जैसे कोई फटी बिवाई पर ताजा मक्खन मल रहा हो, क्षर भर में ही मेरे मन का दिन भर का तनाव खत्म हो गया।

आप किसी की सुनते भी तो नहीं, कितनी बार डाक्टर के पास जाने को कहा, आज तक नहीं गये।

अब जाऊँगा बेटी, खाली हाथ कैसे चला जाता। महँगाई ने योंही इंसान को अधमरा कर दिया है। हर चीज की कीमत दुगनी-चौगुनी हो गयी है। लेकिन सरकार ने पेंशन में एक पैसे की भी वृद्धि नहीं की; वही गिने गुथे नब्बे रुपये। अब तू बेटी से बेटा बन गयी—कमाने लगी। सब ठीक हो जायेगा।

हाँ बापू, सब ठीक हो जायेगा, —और मैं कह क्या सकती थी ?

बापू उठते-बैठते, सबेरे-शाम चाहे जब कहने लगते हैं—काशी नाथ बड़ा भला निकला। बहुत बड़ा अहसान किया है उसने मुझ पर, मैं मरते दम तक उसके इस अहसान को नहीं भूल सकता, जरा से इशारे पर कम्मो को रोजी-रोटी से लगा दिया, आज इस जमाने में कौन किसका इतना ख्याल रखता है।

और जब वे इस तरह अपने दोस्त की सज्जनता, सहृदयता और उदारता की दुहाई देते होते, तो मेरे रोम-रोम से लपटें उठती होतीं। मैं अन्दर ही अन्दर जल कर राख हो जाती।

कितनी बार मन में हुआ, मैं सब कुछ साफ-साफ कह दूँ बापू से, बता दूँ, ये हैं आपके परम मित्र श्री काशीनाथ ।

मैं उनके बुलाने पर डिक्टेशन लेने पहुँचती हूँ । और उनका पहला रिमार्क होता है–मिस शर्मा, वाकई आप स्मार्ट हैं ।

.....

मैं कुछ नहीं बोलती ।

एक दिन कहने लगते हैं—बड़ी फ्रेशनेस है आपमें, मिस शर्मा । आजकल की लड़कियों में ऐसी ताजगी बहुत कम देखने में आती है ।

.....

उस दिन भी मैं कोई जवाब नहीं देती ।

दूसरे हफ्ते, भर नजर देखकर आखिर अपने मुँह से लार टपका ही देते हैं—

कामिनी, तुम स्लीवलेस ब्लाउज क्यों नहीं पहनतीं ?

जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया मुझे । मैं रूखी पड़ जाती हूँ–मुझे पसन्द नहीं । औरत की नंगी बांहों से मुझे बेशर्मी झाँकती दिखायी देती है ।

वे तुरन्त तुम से आप पर लौट आते हैं—आप बुरा मान गयीं, मिस शर्मा । मैंने तो यूँ ही पूछा था ।

इसके बाद कुछ दिनों तक उन्होंने कोई हल्की-फुल्की बात नहीं की ।

एक दिन फिर अपनी पर आ गये । कुर्सी से उठते-उठते पहले दिन की तरह, मेरे गले में नीचे के हिस्से को नंगी निगाहों से देख कर बोलते हैं—कुछ पिक्चर-विक्चर का शौक है ?

जी नहीं ।—मैं उल्टे पाँव लौट आती हूँ ।

कल तो जैसे मेरे जिस्म की फरमाइश ही कर बैठे—इन दिनों बंगले पर अकेला हूँ । वाइफ सब बच्चों के साथ हजारीबाग गयी हैं, एक

मैरिज में....।

मैं तपाक से पूछती हूँ—आप मेरे पिता के दोस्त हैं न ।

हाँ-हाँ, तभी तो तुम्हारे लिए नयी पोस्ट क्रियेट करनी पड़ी ।

मैं पूछती हूँ कि क्या दोस्त की बेटी आपकी बेटी नहीं ?

क्यों नहीं । घड़ा पानी पड़ गया उन पर । सफाई देने लगते हैं । मैं बीच में ही उठ कर चली आती हूँ ।

अचानक उसमान मियाँ का हाथ लोहा काटने की मशीन के नीचे आ गया । जाने कैसे गफलत हो गयी । टुहनी से नीचे का हिस्सा कट कर दूर जा फिंका था—गन्ने के टुकड़े की तरह । खून की धार लगी थी । जाने कितना खून बह चुका था । पत्थर का कलेजा है उसका । एक आह तक न निकली मुँह से । खड़ा-खड़ा बस बैठ भर गया था । सारे कारखाने में सनसनी फैल गयी—यह कैसे हो गया ? मैं तो यह करुण दृश्य देख कर चीख पड़ी थी । उसी समय मैनेजर ने डाक्टर व्यास को फोन किया । वे पाँच मिनिट के भीतर आ भी गये । उन्होंने खून साफ करके बड़ी सावधानी से बैंडेज की । तुरंत विटामिन के और मर्फिया के दो इंजेक्शन दिये और बास से बोले—इसी समय हास्पिटल ले जाना होगा । शायद खून देना पड़े । किसी जिम्मेदार व्यक्ति को साथ कर दीजिये । जाने कब कैसी जरूरत आ पड़े ।

बास ने आज्ञा दी—मिस शर्मा, आप डाक्टर व्यास के साथ हास्पिटल चली जायें । गाड़ी आपके डिस्पोजल में रहेगी । ड्राइवर आपको हास्पिटल से घर छोड़ जायगा ।

इस तरह मैं डाक्टर व्यास के सम्पर्क में आयी । उन्होंने बड़ी तत्परता, ईमानदारी और लगन से उसमान मियाँ की देख-सहेज और तीमारदारी की । एक अच्छे डाक्टर में जो कुछ होना चाहिए वह सब मैंने डाक्टर व्यास में पाया । मैं उनके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुई ।

मैं रात को करीब नौ बजे घर पहुँची । मेरी आहट मिलते ही बापू उठ कर बैठ गये । खाट पर लेटे जोर-जोर से खाँस रहे थे । खाँसते-खाँसते ही बोले—बड़ी देर कर दी बेटी आज ।

मैंने उन्हें लेटा दिया । चारपाई पर उनके सिरहाने बैठ गयी । बोली—बापू, आज मुझे हास्पिटल जाना पड़ा । सीधी वहीं से आ रही हूँ । कम्पनी की कार मुझे घर छोड़ने आयी थी ।

हास्पिटल क्यों जाना पड़ा बेटी ?

उसमान मियाँ कारखाने के बहुत पुराने मशीनमैन हैं । लोहे की कोई मोटी छड़ काट रहे थे । उनका हाथ मशीन के नीचे आ गया । आधा हाथ कट कर धड़ से अलग हो गया उनका । उन्हीं को ले कर हास्पिटल जाना पड़ा ।

बेचारे का अब क्या होगा ? गरीब का हाथ क्या कटा, जिन्दगी कट कर आधी हो गयी । एक हाथ से क्या कुछ कर पायेगा ।—भरे गले से बापू बोले ।

होगा क्या, कम्पनी हजार-पाँच सौ मुआवजा दे देगी । इससे तो जिन्दगी कटने से रही । कारखाने को तो नया मशीनमैन मिल जायगा लेकिन उसमान मियाँ को तो नया हाथ नहीं मिल सकता । हँस कर जीने वाले कितने हैं आज । सभी तो रो-धो कर ही जिन्दगी काट रहे हैं । जिन्दगी का भार ढो-ढवा कर मौत की घाट उतर जायेंगे बेचारे उसमान मियाँ ।

सचमुच आज जीना दूभर हो रहा है । आजादी के बगीचे में सुख के बदले अभाव, भूख और भ्रष्टाचार ही तो सबसे अधिक फूला-फला है....। अच्छा, अब जा । खा-पी । तेरी माँ ने अभी तक भोजन नहीं किया । बैठी तेरी राह देख रही है ।

जाती हूँ....अरे हाँ बापू, कल आपको डाक्टर व्यास के पास ले चलूँगी । बड़े भले हैं वे । इधर आपको बहुत तेज खाँसी आने लगी है ।

यह कह मैं बापू के माथे पर हाथ फेरने लगी ।

कल की कल देखी जायगी । अभी तो तू जाकर खाना खा ।

मैं खाना खाने चली गयी । माँ चूल्हे के पास बैठी आग ताप रही थी । उनके पास भी तो कोई गरम कपड़ा नहीं हैं पहिनने को ।

दूसरे दिन सबेरे मैं बापू को लेकर डिस्पेंसरी पहुँची । डाक्टर व्यास अपने इक्जामिनेशन-रूम में मरीजों से घिरे बैठे थे । मुझे देखते ही उठ कर खड़े हो गये । हँस कर कहने लगे—आइये, मिस शर्मा । कैसे कष्ट किया ?

कष्ट किया नहीं, कष्ट देने आयी हूँ । पिताजी को लेकर आपके पास आयी हूँ । इधर कई दिनों से उनकी तबियत ठीक नहीं रहती । दिन-रात खाँसते रहते हैं । बहुत कमजोर हो गये हैं ।

कहाँ हैं वे ?

यहाँ भीड़ देखी, इसलिए बाहर के कमरे में बैठा दिया है ।

आप भी खूब हैं । जाइये, ले आइये उनको ।

मैं बापू को ले आयी । डाक्टर व्यास ने खड़े होकर, बड़े आदर के साथ उनका अभिवादन किया । इसके बाद उनका हाथ थाम कर सीधे इक्जामिनेशन-टेबिल पर ले गये । मैं भी वहीं उनके पास जाकर खड़ी हो गयी । जाँच कर चुकने के बाद बोले—बुढ़ापा खुद एक बहुत बड़ी बीमारी है । खाँसी के साथ-साथ इन्हें हल्का बुखार भी आता रहा है । आपने अब तक इनका इलाज क्यों नहीं कराया । किसी डाक्टर को क्यों नहीं दिखाया ? खैर, घबड़ाने की कोई बात नहीं है । मैं जल्दी चंगा कर दूँगा आपके बापू को ।

इसके बाद उन्होंने प्रिसक्रिपशन लिख कर कम्पाउंडर के पास भेज दिया । दवा बन कर आ गयी । दवा तथा कुछ गोलियाँ मुझे देकर बोले—चार-चार घंटे में मिक्श्चर देना है । सबेरे-शाम के चाय के साथ एक टेबलेट । तीसरे दिन आकर रिपोर्ट दीजिये ।

कितने रुपये दूँ, डाक्टर साहब ?

क्या आपके बापू मेरे बापू नहीं हो सकते ? क्या फिजूल की बात करती हैं आप, मिस शर्मा। अच्छा, जाइये आप। इसके बाद हँसी का हल्का-सा झरना फूट गया उसके ओठों से।

रास्ते भर मेरा मन डाक्टर व्यास के इर्द-गिर्द ही घूमता रहा—थोड़ी देर के संग-साथ ने इतनी जल्दी आत्मीयता का रूप ग्रहण कर लिया। कैसा सरल, सौम्य, भव्य व्यक्तित्व है। उन्हें देख कर लगा, दुनिया में भले आदमी भी हैं। मानवता एकदम उठ नहीं गयी। कुछ न कुछ अब भी शेष है।

बापू के मन में भी जैसे यह सब अंकुरा रहा था—कब से जानती है बेटी तू डाक्टर व्यास को ?....घर के लड़के जैसा व्यवहार था उनका।

कल ही तो भेंट हुई है, बापू। उसमान मियाँ को देखने यही तो आये थे। इनके साथ ही तो मैं हास्पिटल गयी थी।

घर पहुँचते-पहुँचते साढ़े दस बज गये थे। मैंने माँ को बापू की दवा आदि की सारी बातें एक ही साँस में बता दीं। इसके बाद जल्दी-जल्दी दो निवाले गले के नीचे उतार, आफिस रवाना हो गयी। फिर भी बस न पकड़ सकी। लिहाजा आफिस कुछ देर से पहुँची। मैं अभी अपनी सीट पर ठीक से बैठ भी न पायी थी कि बास का प्यून आ धमका साहब याद कर रहे हैं आपको।

केवल पन्द्रह मिनट देर से पहुँची थी मैं। यह पन्द्रह मिनट की देरी कोई बहुत देरी नहीं थी। फिर भी मैं अपराधिन की तरह कुछ डरी-सी थी। बास ने कैफियत तलब कर ही ली—आज लेट कैसे हो गयीं, मिस शर्मा ?

इधर बापू की तबियत कई दिनों से ठीक नहीं है। उन्हें ले कर डाक्टर व्यास के दवाखाने चली गयी थी।

आप डाक्टर व्यास के पास क्यों गयीं ? किसी अच्छे डाक्टर को

दिखाना था। उसे अभी आता ही क्या है ? एकदम जूनियर है। इसके पहले आपने कभी बताया नहीं....। दीनानाथ ही खबर कर देते। गाढ़े वक्त में ही तो दोस्त-दुश्मन की सच्ची परख होती है। मैं अपने फेमिली-डाक्टर को भेज देता।

अभी कुछ दिन तो डाक्टर व्यास का ही इलाज रहेगा।—मैंने मुख्तसर जवाब दिया।

मैं जानता हूँ, यह इलाज महीनों चलेगा। आइन्दा आफिस टाइम का ध्यान रखें। मैं खुद कभी लेट नहीं आता।

मैं अब फिर कभी लेट नहीं आऊँगी।

मैं अनमनी-सी अपनी सीट पर आ बैठी। डिसूजा अभी नहीं आयी। वह कभी वक्त पर नहीं आती। अक्सर आफिस छूटने के पहले ही चली जाती है। उसके पास ऐसा कोई खास काम भी नहीं रहता। आधे से ज्यादा समय तो वह हल्के-फुल्के रोमैंटिक उपन्यास पढ़ने में व्यतीत करती है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, उससे आज तक कभी कोई कैफियत तलब नहीं की गयी। मेरा एक दिन देर से आफिस पहुँचना गुनाह हो गया। बहुत ज्यादा अखर गया उनको। डिसूजा डिसूजा है। मैं मैं हूँ। यदि मैं भी डिसूजा बन जाऊँ तो मेरे भी जाने कितने खून माफ हो सकते हैं। पर....

मुझे हर तीसरे दिन डाक्टर व्यास के पास जाना पड़ता है। मैं ठीक समय पर ही आफिस पहुँचना चाहती हूँ। किसी कीमत पर लेट नहीं होना चाहती। इसलिए शाम को ही पहुँच पाती हूँ उनके पास। उस दिन मैं साढ़े आठ बजे पहुँची थी। कोई ज्यादा मरीज नहीं थे। थोड़ी देर में वे भी चले गये।

मुझे दवा मिल गयी। नई हिदायतें भी दे दीं। लेकिन प्रत्यक्ष रूप से मुझे घर जाने की इजाजत नहीं दी। मुझे लगा, जैसे कुछ कहना चाहते हैं। कह नहीं पा रहे हैं। तभी गुमसुम बैठे हैं।

मैंने गुमसुमी के गले में शब्दों की माला डालना ठीक नहीं समझा। मैं भी कुछ देर गुमसुम बैठी रहो। आखिर कब तक इस तरह गुमसुम बैठी रहती। मैंने ही बात शुरू की—डाक्टर, क्या आज बहुत थक गये हैं आप ?

नहीं, ऐसा कुछ नहीं है।

फिर क्या बात है ? ऐसा लगता है, आपके मन में कुछ तिर रहा है, ओठों पर नहीं आना चाहता।

मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ। इसी उलझन में फँसा था अब तक कि कहूँ अथवा न कहूँ। बड़ा आकवर्ड फील कर रहा हूँ।

ऐसी भी क्या बात है। बोलिये, ऐसा क्या है जो आपके मन को इस तरह दबोच रहा है।—मैं यों ही हँस पड़ी।

मिस शर्मा, आपके बास मिस्टर काशीनाथ कैसे आदमी हैं ? मुझे तो बड़े घटिया किस्म के दिखायी दिये। कल खुद आये थे मेरे पास—उसमान के निसबत बात करने। छूटते ही बोले—डाक्टर व्यास, भई, ऐसी रिपोर्ट देना जिससे कम्पनी को कम से कम मुआवजा भरना पड़े। इसके बाद उन्होंने आपको लपेट लिया अपने बातों में। अजीब ढंग से मुँह बनाकर कहने लगे—मेरी स्टेनो को तो आप जानते हैं। वही, जिसे मैंने कल आपके साथ हास्पिटल भेजा था। सुना है, वह अपने बूढ़े बाप का आपसे इलाज करवा रही है। इलाज तो ठीक ही है, बाप की बीमारी के बहाने वह आपसे मेल-जोल बढ़ाना चाहती है। उसका बाप तो दमे का पुराना मरीज है। अब तक क्या सोती रही ? दरअसल वह आपकी चार्मिंग पर्सनैलिटी पर रीझ गयी है। आप पर डोरे डाल रही है। सोसाइटी-गर्ल्स का क्या ठिकाना। हरहरी घास पर मुँह मारने लगती है ये। आपको आगाह करना मेरा फर्ज था। मैंने अपना फर्ज अदा कर दिया। कोई भला आदमी इस तरह निम्न स्तर की बातें नहीं करता।

मैं जोर से हँस पड़ी। मुझे तह में उतरते देर नहीं लगी। सारी

कोशिशें बेकार हो जाने पर अब इस तरह बदनाम करना चाहता है मुझको।

मैंने सहज भाव से डाक्टर के चेहरे पर नजर डाल कर कहा—क्या आपकी भी यही राय है मेरे बारे में ?

आप मुझे लज्जित न करें, मिस शर्मा। इसीलिए मैं कहने में हिचक रहा था। दरअसल में आपको बताना चाहता था कि ऐसे लोग भी हैं दुनिया में। बिल्ली को हर जगह छीछड़े ही नजर आते हैं। मैंने भी उनको ऐसे आड़े हाथों लिया कि तमाम जिन्दगी याद रखेंगे। पैसे वाले हैं तो अपने घर बैठें। इस तरह किसी की इज्जत पर कीचड़ उछालने का उनको क्या हक है।—डाक्टर व्यास तमतमा उठे थे।

गरीबी की छाती पर शुरू से ही जूतों की माला झूलती रहती है, डाक्टर साहब। गरीब का चेहरा मजबूरी की स्याही से पुता होता है। लेकिन यह पुता हुआ चेहरा दुनिया को पुता हुआ दिखायी नहीं देता। कोई अच्छा जाब मिलते ही मैं ठोकर मार दूँगी इस सिम्प्लेक्स कम्पनी की नौकरी को।

मैं भीतर ही भीतर आयी थी, बड़ी मुश्किल से अपने आँसू रोक सकी। घर पहुँचने में देर हो रही थी। एकदम उठ कर चलने लगी तो बोले—मैं आपको ड्राप कर दूँगा। केवल पाँच मिनिट ठहरें। चपरासी बाजार गया है; आता ही होगा।

मैं कार में आगे डाक्टर व्यास की बगल में ही बैठ गयी थी।

मेरे घर पहुँचते ही बापू ने पूछा—दवा ले आयी बेटी ?

हाँ, बापू। डाक्टर व्यास स्वयं अपनी गाड़ी में छोड़ने आये थे। जल्दी में थे। कोई सीरियस केस अटेंड करना था उन्हें, नहीं तो घर पर भी आते।

किसी दिन उन्हें चाय पर बुला लो, बेटी। बड़ा स्नेही स्वभाव है उनका। शब्द-शब्द में मिसरी-सी घुली रहती है। आधी बीमारी तो

अपनी बातों से ही दूर कर देते हैं।

आप अच्छे हो जायं। बुलवा लेंगे। लेकिन बापू, आपके दोस्त यानी मेरे बास तो उन्हें दो कौड़ी का डाक्टर समझते हैं। मन में आया, लगे हाथ वह सब भी कह दूं जो उन्होंने मुझे लपेट कर डाक्टर व्यास से कहा था।

दौलत के मद में मनुष्य के ज्ञान-चक्षु तो बुझ ही जाते है, उसकी आँखें भी पथरा जाती हैं। काशीनाथ बड़े आदमी हैं। उन्हें बड़ा डाक्टर चाहिए—बड़े बंगलेवाला, बड़ो मोटरवाला, बड़ी-बड़ी डिग्री वाला। मेरे लिए तो भगवान सिद्ध हुआ—सचमुच उबार लिया उसने

बापू आत्मीयता में डूब कर उन से उस पर उतर आये थे।

अच्छा, आपको दवा दे दूँ, फिर जा कर लेटूं।

मैं दवा दे कर अपनी खाट पर आ लेटी। मुझे लेटते ही नींद आ जाती है। जाने क्यों मुझे नींद नहीं आ रही थी। पुतलियों में कुछ सलोना-सा जकड़ा-जकड़ा लगता था। मन के किसी कोने में गन्ने के रस जैसा कुछ मीठा-मीठा ढुलक कर जम-सा गया था। लगा, मैं शिव के पार्श्व में उमा बनी बैठी हूँ। मेरा शिव मंगलदाता तो है पर उसकी देह में भभूत के बदले टेरलिन का काला सूट है। कंठ में भुजंग के बदले रेशमी टाई है। नदी पर सवार न हो कर वह फियेट चला रहा है। छिः छिः क्या सोच बैठी। अछूते मन को यह सब नहीं सोचना चाहिए। कहीं ऐसा न हो, सपने में मैं सचमुच उनकी गोद में जा बैठूं—उमा की तरह।

बापू ठीक हो गये थे। उन्होंने फिर बाजार-हाट शुरू कर दी थी।

आफिस से लौटने के बाद मैं अपनी खाट पर लेट गयी। माँ वहीं शीतलपाटी पर बैठी चावलों के बारीक कंकर बीन-बीन कर एक कागज पर रख रही थीं। कीमत के साथ-साथ चावलों में कंकरों की तादाद भी बढ़ती-जा रही है। सिर भारी था। मन भी लोक रहा था—तो आज-

कल आप डाक्टर व्यास के बगल में बैठ कर फियेट में हवाखोरी भी करने लगीं। बास के ये व्यंग-बाण मेरे कलेजे में साल रहे थे।

तभी बापू बाजार से लौटे। माँ को थैला थमा कर मेरे पास आ बैठे। मैंने देखा, कोट की दोनों बाँहें टुहनी के नीचे से भसक गयी हैं। माँ की सुई कोट के उसे हिस्से पर चल चुकी हैं, यह भी मैं साफ-साफ देख रही थी। मैं तकिये पर से सिर उठा कर उनके दोनों घुटनों पर रख लिया। गर्दन में दोनों बाँहें डाल कर उनका सिर झुका लिया। माँ से मेरा यह लाड़ न देखा गया। बोलीं—कैसी छः महीने की बनी है—बड़ा प्यार उमड़ रहा है आज।

माँ, इस महीने के बजट में बापू के कोट की गुंजाइश जरूर रखना। नया कोट सिलवायेंगे। इसकी आयु तो समाप्त हो गयी—अंतिम साँसें ले रहा है।

जैसा बूढ़ा मैं, वैसा बूढ़ा मेरा कोट। नये कोट का क्या होगा? और कितने दिन जीना है मुझे? उखड़ा हुआ झाड़ किसी दिन भी धड़ाम से गिर सकता है। तेरे पहिनने-ओढ़ने के दिन हैं, बेटी। तू जरूर अपने लिए नयी साड़ी ले लेना।

जाने कैसी बातें करने लगते हैं आप। अब तो बिलकुल ठीक है। क्या हो गया है आपको? यह कहकर मैंने अपनी दोनों हथेलियाँ उनके गालों पर रख दीं। मानों ये किसी माँ की हथेलियाँ थीं जो अपने बेटे के गालों पर उभरी आँसुओं की लकीरें पोंछ रही थीं।

बेटी कम्मो, अभी बाजार में काशीनाथ मिला था। फलों की दूकान के सामने कार में बैठा था। मुझ पर नजर पड़ते ही बुला लिया उसने। यहाँ-वहाँ की बातों के बाद कहने लगा—कामिनी जैसी तुम्हारी बेटी, वैसी मेरी बेटी। ऐसा लगता है, इन दिनों गलत रास्ते पर जा रही है वह। मैंने उसे कई बार डाक्टर व्यास की कार में यहाँ-वहाँ घूमते देखा है। यह ठीक नहीं। ....इन दिनों दफ्तर के काम में भी उसका मन

नहीं लगता बेटी, गरीब की इज्जत शीशे की तरह नाजुक होती है। एक छोटा-सा कंकड़ भी उसे यों ही तोड़ सकता है।

यदि मुझे गलत कदम उठाना होता तो इस तरह निरन्तर जहर के घूँट पीकर चुप रह जाना पड़ता। मेरी खिड़की के शीशे में एक बारीक-सा सुराख भी कोई नहीं कर पा रहा है। इसी की बौखलाहट तरह-तरह से प्रकट हो रही है। यह सब सुन कर मुझे लगा, जैसे मेरी गर्दन को मोंथरी छुरी से रेत रहा है और चीख नहीं पा रही हूँ—बापू....मैं बिसूर पड़ी। हिचकियाँ भरती जाती, रोती जाती। ऐसा लगा था, रोती रहूँ, बिसूरती रहूँ। बोतल में कुछ उफनता हो और डाँट बन्द होने से झाग बाहर न निकल पाता हो—इसी तरह से भीतर ही भीतर उफन रही थी। बेबसी मेरा गला घोंट रही थी। जाने कब तक रोती रही मैं। मेरे साथ माँ रोती रही। बापू भी रोते रहे।

एक दिन अचानक मेरे पेट में भयानक दर्द उठता है, ऐसा दर्द कि लगा—अब प्राण निकल जायेंगे। मैं बचूंगी नहीं। मैं मछली की तरह तड़प रही थी। बापू माँ को इस तरह देखते रह गए, जैसे शून्य में कुछ खोज रहे हों। माँ ने मुझे अंक में भर कर रोना आरम्भ कर दिया।

फटे-पुराने कपड़े में चाहे जितनी बखिया लगाओ, रुकती नहीं, उधड़ उधड़ जाती है—यही स्थिति मेरे बापू की भी है। जैसे-तैसे अभी चलने-फिरने लायक अभी हुए थे कि मैं बीमार हो गयी। मेरी बीमारी यानी सारे घर की बीमारी। एक तो एकमात्र संतान होने के कारण यूं ही सदा से माँ-बाप की लाड़ली हूँ, दूसरे मैं ही जीविका का आधार भी हूँ। जमा-पूंजी के नाम पर क्या रखा है? महीने-पन्द्रह दिन भी तो गाड़ी नहीं खिंच सकती। खाली मुट्ठी में अभाव बन्द रहते हैं, बीमारी घुसी रहती है।

मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक—बापू तुरन्त जा कर डाक्टर व्यास को

ले आये। उन्होंने आते ही नब्ज देखी। पेट टटोला। स्टेथस्कोप से हृदय की धड़कनें गिनने लगे। अब टार्च के उजेले में जीभ और गले का भीतरी भाग देख रहे थे। तभी आँखों में तैरती मेरी पीड़ा पर भी उनकी नजर पड़ गयी। बोले—मिस शर्मा, आप क्यों घबड़ाती हैं? इस तरह जी हल्का नहीं करते। दुख-दर्द कोई नोटिस दे कर नहीं आते, यों ही बगैर बुलाये चले आते हैं। क्या इसके पहले भी इस तरह का पेन उठा था? बीच-बीच में पेट में मरोड़ उठती रही होगी? टीसेंटरी हुई थी कभी? कालिक पेन है। इसका इंजेक्शन अभी इस समय मेरे पास नहीं है। अभी जा कर ले आता हूँ।

वे एकदम चले गये। किसी को एक शब्द भी कहाँ बोलने दिया। इंजेक्शन ले कर मिनिटों में आ गये। इंजेक्शन देते-देते कहने लगे—सबेरे तक आप बिलकुल ठीक हो जायेंगी। लेकिन कालिक पेन कभी भी उठ सकता है। कल आप आफिस नहीं जायेंगी। ये केपसूल चार-चार घंटे में लेते रहिये। अपने बापू को कष्ट मत देना। मैं कल स्वयं किसी समय आ कर देख जाऊँगा।

माँ-बाप इस तरह खड़े थे, जैसे बिना स्टीम के दो एंजिन। गुमसुम। डाक्टर व्यास उन्हें ढाढ़स बँधाने लगे—घर के डाक्टर के रहते आप लोग इस तरह उदास हैं, घबड़ा रहे हैं? कामिनी को ठीक करने की पूरी जिम्मेदारी मुझ पर है।

माँ ने कृतज्ञता प्रकट की—घर के डाक्टर ही नहीं, आप हमारे सब कुछ हैं—सब कुछ हैं।—उन्होंने आंचल के छोर से आँखें पोंछ लीं। कह नहीं सकती, माँ के इन आँसुओं में क्या था—मात्र कृतज्ञता के आँसू तो नहीं थे वे।

अच्छा, अब मैं चलूंगा। पेशेंट मेरे इन्तजार में बैठे होंगे। माँ जी, दवा चार-चार घंटे में अवश्य देता रहें।

और वे चले जाते हैं।

कोई एक घंटे में पेट का शूल तो समाप्त हो गया, पर मन में एक साथ जाने कितने शूल गड़ने लगते हैं—कल आप आफिस नहीं जायेंगी ।—कितने अधिकार के साथ कहा था उनने । बड़ा प्यारा लगा था उनका यह कहना । काश, वे सदा यह अधिकार जता पाते । मैं चाहती हूँ, कोई इसी तरह आज्ञा दे, अधिकार जताये और....। माँ ने पहली भेंट में ही यह कैसे कह दिया—आप हमारे सब कुछ हैं....सब कुछ हैं । क्या वे मेरे सब कुछ नहीं बन सकते ? केवल मेरे ? माँ के आँसू पीड़ा के आँसू तो थे, शायद उनमें कहीं यह भी अटका था—काश, कामिनी का विवाह.. । वे घर के डाक्टर तो बन चुके हैं । यही क्या कम है ? भविष्य की इन्द्रपुरी से वर्तमान की झोपड़ी में रहना ही अधिक श्रेयस्कर है । उनके स्निग्ध स्पर्श में नहा गयी हूँ मैं । अभी भी उनका स्टेथस्कोप मेरी छाती पर रखा है और मेरी छाती फूल रही है—स्नेह-स्फुरण से । अरे, यह सब वीराने में भटकना जैसा है । डाक्टर के लिए जिस्म जिस्म होता है—चाहे वह औरत का हो अथवा मर्द का । मैं जिस शीतल, सुखद और स्निग्ध स्पर्श में नहा रही हूँ, वह एक डाक्टर का स्पर्श है । यह मुझको नहीं भूलना चाहिए । और डाक्टर की छुअन—इसके आगे कुछ भी नहीं ।....

सबेरे जब मेरी आँख खुलती है, तो जैसे एक एहसास भी पलकें खोलता है, ओ अभी तक बगल में मेरे साथ सोया हुआ था । दूधिया चाँदनी में पड़े हैं हम दोनों । अंग-अंग में कुछ सन-सा गया है । मेरी अलकों की एक पतली-सी, नन्हीं-सी लट तो जैसे अब भी नाइट-सूट के बटन में उलझी है । जुदा नहीं हो पा रही है । कोई मेरे बदन पर गुलाब-जल छिड़के चला जा रहा है । पोर-पोर महक रहा है मेरा ।

इंजेक्शनों का कोर्स पूरा हो चुका है । तीन महीने से अधिक बीत गये । कोई पेन नहीं उठा । एक हल्का-सा, मीठा-सा दर्द तो जब-तब

उठता ही रहता है लेकिन इसका कालिक पेन से कोई सरोकार नहीं । लाल-सी कोई एक गोली है जिसका दिन में एक बार चाय के साथ खाना अनिवार्य है । जरा-सी गफलत पर डाक्टर की जाने कितनी बातें सुननी पड़ती हैं । नारी में इस तरह की डांट-फटकार की भी ललक होती है, मैंने अब जाकर महसूस किया ।....इस गोली से पिंड छूट जाता तो मैं एकदम निश्चिन्त हो जाती ।

डाक्टर का कहना है, महीने-पन्द्रह दिन में मैं जाँच करवा लिया करूँ । मैंने आफिस से लौटने पर डिसपेंसरी जाने का निश्चय किया । खा-पीकर पहुँच भी गयी । डाक्टर अकेले थे । बैठे सिगरेट पी रहे थे । जैसे मेरे ही इन्तजार में थे ।

मेरे मुँह से यों ही निकल गया—शायद शहर की सारी बीमारियों ने एक साथ हड़ताल कर दी है । तभी एक भी मरीज नजर नहीं आ रहा है ।

आपने हड़ताल कैसे तोड़ दी ? क्या आपकी गिनती मरीजों में नहीं है मिस शर्मा ? वे मुसकरा पड़े दूज के चाँद की तरह ।

मैं बीमार नहीं हूँ । आप जरूर मुझे अपना मरीज बनाये बैठे हैं । अच्छा, चलिये, देखिये मुझे । मैं चाह कर भी नहीं कह सकी—जिसका न कोई इलाज हो, ऐसा मरीज क्या करे । मैं अपनी हँसी नहीं रोक सकी । धीरे से हँस दी ।

देख तो रहा हूँ, और कैसा देखना होता है ?

यह डाक्टर का देखना नहीं । डाक्टर का देखना यानी जाँच करना ।

अपनी क्लीनिक में डाक्टर हमेशा डाक्टर ही होता है । मेरा डाक्टर ही आपको देख रहा था ।

मैंने डाक्टर की आँखों से अभी-अभी किसी और को झाँकते देखा है । छोड़िये भी ।

यह आपका निरा भ्रम है । अच्छा, आइये ।

मैं जाकर इकजामिनेशन-टेबिल पर लेट जाती हूँ। लगा, लकड़ा को मेज पर नहीं, डनलप के गद्दे पर लेटी हूँ—बेला के ताजे फूलों पर। डाक्टर पेट में पंजा गपा रहे हैं। मुझे जाने कैसा अजीब-सा लगता है। सुरसुरी-से उठता है नीचे-ऊपर तक। इसके पहले कभी ऐसी अनुभूति नहीं हुई थी। मैं वही हूँ। डाक्टर भी वही है। उनके हाथ का पंजा भी वही है। फिर यह सब क्या है जो मौलसिरी के फूलों की तरह अपने आप झर रहा है मेरे रोम-रोम पर। डाक्टर की अँगुलियाँ गुदगुदी जगाना कहाँ से सीख आयीं ? मैं भर नजर उन्हें देखती हूँ—डाक्टर डाक्टर ही है। कहीं कुछ बदला नहीं है। मैंने ही उनकी आँखों से मनु को झाँकते देखा था।

पेट के ऊपरी हिस्से तक आते-आते जैसे उनके हाथ को ब्रेक लग गया। इसके बाद ही वे बोले—बाडिस खोल दीजिये।

मैंने बाडिस खोल दी। साड़ी की पल्लू भी हटा दिया गया। छाती निरावरण हो गयी। उन्होंने साफ देखा—देह-सरोवर में दो बड़े कमल फूले हैं। भगवती बाबू की चित्रलेखा गीले वस्त्रों में अपने उभरते अंगों को देख कर सहज ही लजा गयी थी। कुछ वैसी अनुभूति मुझे भी हुई। मेरी पलकें अपने आप झप गयीं। छाती धक-धक कर उठी। एकाएक किसी विद्युत-प्रवाह ने उन्हें झकझोर दिया और उसी क्षण रस भरे बादल रेगिस्तान पर एकबारगी बरस पड़े। चुम्बक की तरह खिंच आये थे वे। इसके बाद मैं स्वयं को उनकी बाँहों में आबद्ध पाया।

दो मिनिट में करेंट गायब हो गयी—वे बाहर निकल गये।

मैंने बाडिश देह में डाल ली धारण नहीं की। इधर पीठ पर हुक फंसाती जा रही हूँ, वहाँ फँसा हुआ मन बाहर होता जा रहा है। लो, बाहर हो भी गया—मेरे चारों ओर भयानक लपटें उठ रही हैं। ओठों पर शोले दहक रहे हैं। देह का कोई हिस्सा जल रहा है—चमड़ी जल कर उधड़ भी गयी। अब मांस-मज्जा में आग लग गयी है। दुर्गन्ध उठ

रही है—मैं अपावन हो गयी। लगता है, खूब जोरों से रो लूँ। इतनी जोर से—खूब गला फाड़ कर कि जो अभी अघटित घट गया है, वह सब का सब आँसुओं में डूब जाये।

बेला के वे फूल वहीं छूट गये। अब मैं डाक्टर व्यास के सामने लोहे की कुर्सी, पर बैठी हूँ। कहाँ बेला के फूल। कहाँ लोहे की कुर्सी। यही विरोधाभास ही मेरी जिन्दगी है—विरोधाभास बन कर ही तो जी रही हूँ। जी क्या रही हूँ—तीन व्यक्तियों का जीवन ढो रही हूँ। वे बैठे सिगरेट पी रहे हैं। अभी एक सिगरेट मात्र ओठों से लगा कर फेंक चुके हैं। मुँह जला कर मसल दिया है उसको। धुंए के लच्छे के लच्छे निकाल रहे हैं। उससे रत्ती भर धुआँ नहीं उठने दिया। एक तरह से यह अच्छा ही हुआ। धुआँ उठ जाता तो....

उनकी आँखें बाम्बे हास्पिटल जर्नल पढ़ रही हैं। क्या इसका पढ़ना इतना जरूरी था। यह पढ़ना झूठ-मूठ पढ़ना है। पढ़ने का बहाना लिये बैठे है। कुछ देर पहले जो मनु मुझ पर झुक आया था, वह अब फिर डाक्टर बन गया है।—वे कुछ नहीं बोलते। मैं भी कुछ नहीं बोलती। जैसे हम दोनों के बीच अबोलपन खड़ा हँस रहा है।

एक चौदह-पन्द्रह साल का छोकरा मौन की दीवार भी गिरा देता है—डाक्टर साब, मेम साब जी आपको याद कर रही हैं। सिनेमा जाने के लिए तैयार बैठी हैं।

अरे, मैं तो भूल ही गया था कि आज वाइफ ने पिक्चर का प्रोग्राम बना रखा है। चलिये, पहले आपको छोड़ दूं।

आप जाइये—साढ़े नौ बज रहे हैं। मैं रिक्शे से चली जाऊँगी।—भाग्य में तो पाँव है, रिक्शा हैं—अधिक से अधिक बस। अब जीवन में कभी किसी कार में बैठने की गलती नहीं करूँगी। यह कहना चाह कर भी मैं नहीं कह सकी। चुपचाप उठ कर चली आयी—ठगी-सी।

अंग्रेजी के दो अक्षरों के इस मिस शब्द से अब मुझे चिढ़ उठती है।

चिढ़ ही क्यों, नफरत होने लगी है । मेरा वश चले तो संसार की सारी डिक्शनरियों से इसे हठवा दूं । कोई इस पर गाढ़ी काली स्याही क्यों नहीं पोत देता ? न सही स्याही तेज ब्लेड से ही छील कर क्यों नहीं साफ कर देता ।

●●

उखड़ा हुआ आदमी

आंधी का आवेग थम गया था । थमा क्या बिलकुल शान्त हो गया, जैसे अपनी उचित मांग और अधिकार पाने के लिए किसी कारखाने के द्वार पर मजदूरों का विशाल जुलूस जोर-शोर के नारे लगाने के बाद, अपनी इच्छित मांगों की स्वीकृति पर खामोश हो जाये । मैंने कमरे की खिड़की खोली । सामने दूर मैदान में खड़ा खजूर का पेड़ उखड़ा पड़ा था । खजूर का पेड़ यों साधारण आंधी के आवेग को सहज सह जाता है । रेगिस्तान में खजूर रेत के तूफानों में भी नहीं उखड़ता, लेकिन वह मैदान में पिछले ३०-४० बरस से खड़ा खजूर उखड़ गया । मेरे जीवन की कितनी घटनाएँ उस खजूर से लिपटी हैं । मन बेचैनी अनुभव करने लगा । खिड़की से पार जाने वाली नजरें जो खजूर पर जा के अटक जाती थीं, अब कहाँ अटकेंगी । दृष्टि के सफर का पहिला पड़ाव वीरान हो गया ।

मन पर भारी दबाव पड़ा खजूर के उखड़ने से । सामने दरवाजा खोला । दरवाजे पर लटके परदे में कोई हलचल नहीं थी क्योंकि हवा में

निश्चेष्टता समाई थी। परदा हटाया तो सामने ईश्वरदास के आँगन पर नजरें टिक गयीं। आँगन में कुछ लटके चेहरे, कुछ उखड़े-उखड़े पांव दिखे। कुछ लकवा मारी हुई आवाजें और कुछ बेरहमी से पीटे गये कैदी की बन्द कोठरी को चीरती चीखें मेरे कानों में धँसीं। मुझे समझते देर न लगी कि ईश्वरदास की साँस भी उखड़ गयी।

मैंने मुड़ कर खिड़की के उस पार देखा उखड़े खजूर को और इस पार दरवाजे के बाहर उखड़ी साँस वाले ईश्वरदास को। एक के बाद दूसरा झटका लगा मुझे।

ईश्वरदास के साथ मेरी पिछली ३० बरस की यादें लिपटी थीं। खजूर की तरह उसका भी तना बड़ा कड़ा था। आँधी के तरह उसने भी संमाज की कड़वाहट पी थी। मगर अभी तक उसकी रेगिस्तानी जिन्दगी को सांस नहीं उखड़ी थी। उसके पोर-पोर से जीवन-रस निकाला गया, जैसे खजूर की गाँठ-गाँठ से ताड़ी निकाली गयी थी। दोनों की जिन्दगी ने उनके जिस्म को काफी टेढ़ा और खोखला बना दिया था। आज दोनों एक साथ उखड़ गये। कैसा संयोग है साँसों का।

ईश्वरदास को सबसे पहिले मैंने दमोह में देखा, जब वह विद्यार्थी था हाई-स्कूल का। क्लास-रूम और खेल के मैदान में उसकी अपनी अलग शान थी। स्कूल में पहिले दर्जे से उसे स्कालरशिप मिली जो मैट्रिक तक बराबर मिलती रही। पढ़ने-लिखने में वह कभी किसी के पीछे नहीं रहा। खेल के मैदान में क्या हाकी, क्या फुटबाल—दोनों में बड़ा दक्ष। स्कूल-टीम में दोनों का कैप्टन था। एक बार फुटबाल मैच दमोह की पुलिस-टीम से हुआ। ईश्वरदास के हेडमास्टर ने उसकी पीठ ठोंकी और हँसते हुए कहा कि मैच जीतोगे तो पूरी टीम को शानदार दावत दी जायगी और फोटो-ग्रुप भी लिया जायगा। ईश्वरदास ने सिर झुका कर आशीर्वाद लिया और हजारों की भीड़ में अपनी टीम को ले कर खेल के मैदान में उतरा। लड़कों की टीम और पुलिस की टीम। सहज ही ईश्वरदास को

टीम को चीअर अप ज्यादा किया गया। बड़े संघर्ष का मैच हुआ। ईश्वरदास पूरे मैदान में छाया रहा। पुलिस के लठैत जवानों के आगे वह लाख कोशिश के बाद भी गोल नहीं कर पाया। जनता बार-बार उत्साहित करती अरे ईश्वरदास मार दे गोल। मुकुन्दी को पास-आन कर। अरे देख, कालिया झपटा। अरे बैक को संभाल। बड़ी कशमकश रही। पाँच मिनट रहते-रहते ईश्वरदास ने गोल मार ही दिया। उधर गोल हुआ और इधर ईश्वरदास गिर पड़ा। बड़ा विजयोल्लास का शोर-गुल मचा और भीड़ ने ईश्वरदास को काँधे उठा लिया। वह बेहोश था। उसके पैर का अँगूठा टूट गया था।

ईश्वरदास करीब महीना भर अस्पताल में रहा। अँगूठे में गेंगरीन हो गया। डाक्टर ने आपरेशन किया और उसकी जाँघ से कई जगह से थोड़ी-थोड़ी चमड़ी निकाल कर अँगूठे के हिस्से में लगायी। उस वक्त डाक्टर ने उसे बेहोशी की दवा सुंघानी चाही मगर उसने इन्कार कर दिया। बिना बेहोश हुए उसने आपरेशन कराया। उसकी हिम्मत और साहस की चरचा लोगों की जुबान पर चढ़ गया। ईश्वरदास को सब का बेहद प्यार मिला। लोग कहते—भाई वाह, कमाल का लड़का। जैसा पढ़ने में वैसा ही शारीरिक क्षमता में।

इसके बाद मेरी मुलाकात ईश्वरदास से नहीं हुई काफी अरसे तक। मेरी खिड़की के बाहर मैदान वाला खजूर उन दिनों बढ़ कर पुष्टता ग्रहण कर रहा था। नुकीली पत्तियों का गुम्बद उसके सिर पर बड़ा भला लगता था।

पाँच बरस बाद मुझे अनायास अपने कारोबार के सिलसिले में करीब के शहर जाना पड़ा। बस-स्टैन्ड जिला कचहरी के पास ही था और जेल भी। मैं मोटर से उतर कर सिगरेट खरीदने एक पान की दुकान पर खड़ा हो गया जो कचहरी के मोड़ पर ही थी। मैंने सिगरेट सुलगाई ही थी कि सामने दो सिपाहियों के साथ हथकड़ी डाले ईश्वरदास मुझे दिखा।

मुझे विश्वास नहीं हुआ कि यह ईश्वरदास हो है । मेरी सुलगी सिगरेट हाथ से गिरी । मुझे लगा जैसे मैं ढलान से लुढ़क कर गहरे गर्त में गिर पड़ा हूँ । वह ईश्वरदास ही था । कचहरी से निकल कर सिपाही उसे पास के जेल में ले गये । वह सिर झुकाये जेल के बड़े फाटक के भीतर घुसेड़ दिया गया ।

शहर से मैं दूसरे दिन लौटा तो मैंने खिड़की से मैदान में खजूर को देखा । किसी ने ताड़ी निकालने के लिए, उसके तने को छेद कर एक हण्डी बाँध दी थी । वहाँ ईश्वरदास की जिन्दगी पर पहिली चोट मार कर किसी ने उसका जीवन-रस चूसना शुरू कर दिया था ।

चार बरस बाद, फिर संयोग की बात है कि मैं सिनेमा घर में पहिला शो देख रहा था । बरसात की रात फिल्म चल रही थी और गाना गा रहा था हीरो जिन्दगी भर न भूलेगी बरसात की रात, एक हसीना से मुलाकात की रात । हाल में बड़ी खामोशी थी । प्रणय-वेदना का दृश्य परदे पर उभर रहा था । हाल के सुरमुई धुंधलके में मैंने देखा कि एक आदमी मेरी बगल वाली सीट पर आ कर बैठा । मुझे थोड़ा सा डिस्टर-बेन्स लगा मगर मेरी नजरें परदे से न हटीं । सामने की सीट पर दो तरुणियाँ बड़ी तन्मयता के साथ हीरो की तरफ आकृष्ट हो रही थीं । यह उनके वार्तालाप से व्यक्त हो रहा था । गाने की अंतिम पंक्ति चल रही था एक हसीना से मुलाकात की रात । इसी बीच दो में से एक तरुणी बोली, जनाब को चैन नहीं—हसीना की बेचैनी का इन्हें क्या अन्दाज ? उसके मुँह से इतना निकला ही था कि मेरी बगल की सीट वाले महाशय ने एक रप्प से झापड़ उस तरुणी की चेंथी पर मारा और तरुणी की चीख और हलचल दोनों के बीच वह झपट्टा मार कर बाज की तरह बाहिर निकल गया । हाल में बड़ा शोरगुल मच गया । मैं बड़ी उलझन में पड़ गया । वो तो अच्छा हुआ लोगों ने किसो को बाहिर जाते देख लिया वरना मेरी दुर्दशा में देर न थी ।

हाल में मची गड़बड़ी के बीच मैं हाल के बाहिर निकल आया और सीधा सड़क पार कर एक पान की दुकान पर आ खड़ा हुआ । वहाँ ईश्वरदास खड़ा सिगरेट पी रहा था । उसे देख कर मुझमें उससे मिलने की अचरज भरी उत्सुकता कसमसाने लगी । मगर वह बुत की तरह खामोश । बरसों बाद मुलाकात, लेकिन इसको क्या हो गया ? मैंने उसे हाथ से झटका देते हुए कहा, कहो ईश्वरदास तुम यहाँ कहाँ ? उसने कहा, सिनेमा देख रहा था तुम्हारे बगल में बैठा । मेरी आँखों के सामने बीस मिनिट पहिले चलने वाली फिल्म घूम गई । तरुणी को मारने वाला हो न हो ईश्वरदास ही हो ।

मुझसे न रहा गया । मैंने उससे तरुणी को तमाचा मारने का कारण जानने की बड़ी उत्कट इच्छा प्रकट की । पान की दुकान से हटा कर मैं उसे पास की होटल में चाय पिलाने ले गया । चाय का आर्डर देते हुए मैंने उसे कुरेदा और वह बोलने लगा बेहिचक—मुझे हर औरत से नफरत है, मुझे हर जवान औरत से नफरत है । तुम्हें मालूम है, जब गाना चल रहा था तब वह बेहया लड़की क्या लुत्फ ले रही थी गाने का । हीरो के बारे में उसने क्या कहा ? तुमने सुना ? मुझे इससे शिकायत नहीं कि कौन किसे क्या कहता है । मुझे घृणा है इनके अस्थिर विचारों से । मैंने बड़ा सबक सीखा है । तुमने मुझे दमोह के जेल में घुसते देखा था । आखिर क्यों ? इसी किस्म की जवान लड़की के कारण । मैं अच्छा भला था । मेरी बीबी थी, बच्चे थे । मैं टीचर था । लेकिन जबरन हेडमास्टर की लड़की ने मुझे फुसलाया । मैं पत्थर था, मौन हो गया । ढाल में पारे की तरह फिसल पड़ा उस लड़की के कारण । मेल-जोल बढ़ गया और एक रात में जब उसके मकान से चोरों की तरह छुप कर निकल रहा था तो उसके बाप हेडमास्टर ने आधी रात मुझे अपने घर के आँगन में पा कर चोर-चोर चिल्ला दिया । मैं भागा नहीं । मैं स्वयं पकड़ा गया । मेरे पास उसकी लड़की की चिट्ठी थी । मुझे भरोसा था लड़की इन्कार न करेगी । मेरा

पच्च लेगी । आखिर उल्टा हुआ । वह प्यार से मुकर गई । पुलिस ने मेरे पास से उसका पत्र लेकर फाड़ दिया । मुझे चोरी के इल्जाम में सजा हो गई ६ माह की । दमोह छोड़ने के बाद मेरी तुमसे कभी भेंट ही नहीं हुई ।

जेल की जिन्दगी ने मुझमें नफरत भर दी । औरत जात के प्रति मेरी घृणा बड़ी तीखी है । आज मैंने उस लड़की को इसीलिए मारा । अगर बाहिर मिलती तो गला घोंट देता । मुझे कलेक्टर के मुंशी ने इसी किस्म की ६ माह की सजा और दिलवाई थी । उसकी लड़की को मैं ले भागा था पिछले बरस । अब मुझे शराफ़त की जिन्दगी कबूल नहीं । मैं चट्टान था लेकिन समाज के शिल्पकार ने मुझे तराश कर शैतान को शकल दे दी । शराफत के ठेकेदार जरा-सी भूल की इतनी बड़ी सजा दिलाते हैं कि कमजोर जिन्दगियाँ तबाह हो जाती हैं । अभी कल की बात है । मैंने एक डिस्पेन्सरी से माइक्रोसकोप झाड़ा और एक सौ रुपये में बेच दिया । पचास रुपये अपनी औरत को दे आया और उससे कह आया कि जैसे मैं जिन्दगी जी रहा हूँ, वह भी जिये । जैसे मैं हर औरत पर अपना हक ससझता हूँ आजकल वह भी हर पुरुष पर अपना हक समझे । इज्जत का ढकोसला इन्सान को कमजोर बनाता है । छोड़ भी यह सब.....। चल चाय के पैसे दे । कल घर पर मिलूंगा । यह कहता हुआ ईश्वरदास निकल गया ।

दूसरे दिन सुबह जब मैंने गौर से अपनी खिड़की खोलकर खजूर के झाड़ को देखा तो उसमें सातवीं बार ताड़ी निकलने के लिए हंडी लटकायी जा रही थी और ईश्वरदास को सातवीं बार जेल की सजा हुई थी ।

● ●

बेचारी असिता

उस दिन शाम को जब प्रेस से थका-माँदा घर पहुँचा तो मैं देखता हूँ कि ड्राइंग-रूम में मेरी पत्नी से सटकर कोई श्रीमती जी बैठी हैं । दोनों में घुल-घुल कर बातें हो रही हैं । वे मुझे देखते ही उठ कर खड़ी हो गयीं और दोनों हाथ जोड़ कर बड़े आदर-भाव से बोलीं—नमस्कार ।

मैं भी हाथ जोड़ मुस्कराकर कह देता हूँ—नमस्कार । इसके बाद सामने की कुर्सी पर बैठते-बैठते मैं सहज भाव से कहता हूँ—बैठिए-बैठिए, आप खड़ी क्यों हैं । तभी रमा बड़ी आत्मीयता से परिचय देती है—यह हैं असिता—मेरे बचपन की सहेली । हम दोनों साथ खेली हैं, साथ पढ़ी हैं । तीन महीने से इसी शहर में हैं । आज जाकर मेरे पास आने की फुर्सत मिली ।

रमा अब तक न आ सकने के लिए और खोद-विनोद न करे इसलिए असिता स्वयं कैफियत दे देती है—क्या करूँ रमा, नयी-नयी नौकरी है—वह भी लेडी टीचर की । एक तो मकान ही बड़ी मुश्किल से मिली,

दूसरे तुम तो जानती हो नये स्थान में नये सिरे से गृहस्थी बसानी पड़ती है। गोद में नन्ही-सी बच्ची है। पहले तो कई दिनों तक उसे साथ लेकर स्कूल जाती रही, अब जाकर कहीं ऊपर के दूध की आदत पड़ी है....।

अच्छा, तुम इनसे बातें करो। मैं चाय लेकर अभी आती हूँ। रमा यह कह कर अंदर चली गयी।

मैं देखता हूँ वह बड़ी उलझन में है। जैसे वह नहीं सोच पा रही है कि आखिर वह क्या बात करे। कुछ क्षणों के अन्तराल के बाद धीरे से उसके बोल फूटते हैं—आप बहुत प्यारे गीत लिखते हैं। मुझे वे बहुत प्रिय हैं। कई गीत तो मुझे याद भी हैं। मैं उन्हें बहुधा गाया करती हूँ।

मैंने एक हल्की-सी हँसी के साथ कहा—यह उनका सौभाग्य है जो आप उन्हें गाती हैं, वैसे उनमें ऐसा कुछ है नहीं। रमा ने तो कभी मेरा कोई गीत नहीं गया। उसके मुँह से तो जब-तब यह ताना सुनने को मिलता है—भगवान भूल कर भी कभी किसी औरत को कवि की पत्नी न बनाये।

असिता ने धीरे से मुसका दिया। उसकी झिझक कुछ कम हो गयी है। वह बड़ा प्यारा उत्तर देती है—रमा क्या गीत गाये, वह तो स्वयं एक गीत है—जिसे आप गाते हैं अपने जीवन में, गीतों में।

अरे, यह क्या, आप तो कविता करने लगीं। क्या आप भी कविता लिखती हैं ?

कविता आनन्द के क्षणों में जन्मती है। मेरी जिन्दगी तो आपाधापी की जिन्दगी है। मैं क्या कविता करूँगी। मैं आनन्द-प्राप्ति के लिए ही आपके गीत गाती हूँ—चाहे वह क्षणिक आनन्द ही क्यों न हों।—रेडियो पर तो आपको कई बार सुना है। आज प्रत्यक्ष सुनने की इच्छा है।

ऐसी जल्दी क्या है। आप तो अब आती ही रहेंगी। फिर कभी सुनाऊँगा।

सुना है, बिना मूड के कविता नहीं लिखी जाती। कविता सुनने के लिए भी मूड चाहिए। जान पड़ता है कि आप आज कविता सुनाने के मूड में नहीं हैं।

आपने तो जैसे मेरे मुँह की बात छीन ली। आज मैं बहुत थका हुआ हूँ।

इसी बीच रमा चाय-नाश्ता लेकर आ जाती है। कैटली से चाय ढालते हुए वह कहती है—क्यों असिता, गीत की फरमाइश की ?

फरमाइश मैं क्या खा कर करूँगी—प्रार्थना जरूर की थी पर मेरी प्रार्थना तो स्वीकार नहीं हुई। अब तेरे कहने से ही देवता पिघल सकते हैं। असिता के स्वर में निराशा का एक हल्का-सा पुट था।

सुना क्यों नहीं देते जी।—रमा ने सहज अधिकार से कहा।

रमा, सचमुच आज मैं बहुत थका हुआ हूँ। सारे दिन काम में जुटा रहा। क्या तुम्हारी असिता का आग्रह मेरे लिए काफी नहीं था ?

तो तुम असिता से अपना गीत सुनो। गाओ तो असिता। रमा हारमोनियम ले आती है।

चाय पी चुकने के बाद असिता की अंगुलियाँ बिजली की तरह हारमोनियम पर दौड़ने लगती हैं। वह गाती है—

जाने कब की देखा-देखी धीरे-धीरे प्यार बन गयी।
लहर-लहर में चाँद हँसा तो लहर-लहर गलहार बन गयी।

असिता बड़ी तन्मयता से गाती रही। उसके कंठ में बड़ी मिठास है। उसने गीत को ऐसी बढ़िया धुन में बाँधी है कि क्या कहना। मैं मन्त्र-मुग्ध-सा सुनता रहा। गीत पूरा हो चुकने के बाद मैंने उसे बधाई दी—ऐसा जान पड़ता है कि ये गीत आपके लिए ही लिखे गये हैं—आपके मधुर कंठ से गाये जाने के लिए। मैं अपना आंतरिक उल्लास व्यक्त नहीं कर पा रहा था।

आप भी कैसी बातें करते हैं। मैं किस लायक हूँ। आज बहुत दिनों

के बाद गाया है इसलिए वैसा नहीं गा सकी जैसा मैं गाती हूँ। यह कहते-कहते जैसे वह सकुचा गयी।

आप सचमुच गीत में डूब जाती हैं। गीत की आत्मा में उतर कर ही गायक उसके साथ न्याय कर पाता है। आपके अनुभूति-सिक्त स्वर ने मेरा हृदय छू लिया है। मैं किन शब्दों में आपकी प्रशंसा करूँ। यह कह कर मैं नये सिरे से असिता का चेहरा पढ़ने लगता हूँ।

आप प्रशंसा न करें, कृपा करें, कृपा करें—केवल एक गीत की कृपा। इन शब्दों के साथ उसने मुझे भरी दृष्टि से देखा जैसे वह दृढ़प्रतिज्ञ है आज मुझसे गीत सुनकर ही जायगी।

आप मुझे और अधिक लज्जित न करें। काश मैं एकबारगी ही आपको अपने सारे गीत सुना सकता। आज तो केवल एक गीत ही सुना पाऊँगा। मैं गाने लगा—

नयन ने नयन से कभी क्या कहा था—
न तुम जान पायीं, न मैं जान पाया।

मैं क्या देखता हूँ कि असिता के बड़े-बड़े नैन अनायास ही नीचे झुक गये हैं। जब तक मैं गीत सुनाता रहा उसने एक पल को भी मेरी ओर नहीं देखा। जाने किस लोक में खोयी हुई पैर के नाखून से जमीन कुरेदती रही। गीत समाप्त होने पर जैसे उसकी तन्द्रा टूटती है—जीवन की सच्ची अनुभूति है इस गीत में। बड़ा पुराना गीत है यह कई वर्ष पहले धर्मयुग में छपा था। मेरी कापी में लिखा है। मैंने कभी इसकी भी ट्यून निकाली थी।

मेरे नये कविता-संग्रह में यह छप चुका है। अब कहाँ ऐसे गीत लिख पाता हूँ। यह तो उस समय का गीत है जब मेरी प्रत्येक साँस स्वयं एक कविता थी और मेरा हर बोल अनुराग में डूबा रहता था।

प्रत्येक मनुष्य की एक ऐसी उम्र आती है जो उसे कवि बना देती है। परन्तु सच्चा कवि तो वह है जो अंतिम साँस तक कविता को जीता है। आप तो अब भी हृदय को छूने वाले गीत लिखते हैं।

यह आपकी गुण-ग्राहकता है। मेरे गीतों से आपको मोह हो गया है इसीलिए आप ऐसा अनुभव करती हैं। यह कह चुकने के बाद मैं कृतज्ञता भरी दृष्टि असिता पर डालता हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि जो असिता अभी गीत गा रही थी वह कहीं गायब हो गयी है। यह जो सामने बैठी है, वह निश्चय ही वह नहीं है। अभी-अभी उसके चेहरे पर जो चाँदनी के फूल खिल उठे थे वे एकदम मुरझा गये हैं और वह फिर से बुझी-बुझी सी हो गयी है।

इस बीच वह रमा का हाथ अपने हाथ में लेकर कहती है—अब जाऊँगी। वीणा द्वार की ओर टुकुर-टुकुर देख रही होगी। जब मैं स्कूल से लौट कर घर पहुँचती हूँ तो वह अपने नन्हे हाथ मेरी ओर बढ़ा कर खिलखिला पड़ती है। उसे गोद में लेते ही मेरी सारी थकावट जाने कहाँ भाग जाती है।

अरे, मेरा कविता-संग्रह तो लेते जाइये।—मैं आलमारी से 'ज्योति-गंगा' निकाल कर उसे दे देता हूँ।

इस पर आप कुछ लिख तो दीजिए। क्या मैं इस लायक भी नहीं। यह कह कर वह स्वयं मेरे पास आकर बैठ जाती है और बड़े ध्यान से देखने लगती है कि मैं पुस्तक पर क्या लिखता हूँ। मैं प्रारंभ के कोरे पन्ने पर लिख देता हूँ—इस असिता को जो इन गीतों की आत्मा में डूब चुकी है।

बहुत-बहुत धन्यवाद। अच्छा, अब चलूँ।

चलिये, मैं आपको पहुँचा आता हूँ। आप का घर भी देख लूँगा।

इसकी आप क्यों तकलीफ करेंगे? आप थके भी तो हैं। रिक्शा मँगवा दीजिये, मैं चली जाऊँगी।

नहीं-नहीं, मैं चलता हूँ। रमा, तुम भी चलती हो क्या?

तुम्हीं छोड़ आओ। मैं फिर कभी जाऊँगी। मुझे तैयार होने में

थोड़ा समय लगेगा और उसे जल्दी पहुँचना है ।

तो तुम आना जरूर—रमा से यह कहती हुई वह मेरे साथ नीचे उतर आयी ।

मैंने कार की अगली सीट का फाटक खोल दिया । पहले वह बैठी उसके बाद मैं ।

गाड़ी रोड पर छोड़ कर मुझे उसके साथ कोई साठ-सत्तर गज एक संकरी गली के अंदर जाना पड़ा । आगे-आगे जीना चढ़ती हुई वह बोली—पचास रुपया किराया है इन दो कमरों का । और पानी नीचे से लाना पड़ता है सो अलग । हम लोग ऊपर पहुँच गये । कमरे में दो सस्ते किस्म की कुर्सियाँ और एक पुराना-सा पलंग था । सबसे पहले असिता ने बच्ची को गोद में लेकर छाती से चिपटाया, बड़े दुलार से उसे चूमा, तब बोली—ये मेरे पति....और आप रमा के पति, सुप्रसिद्ध कवि श्री....।

उन्होंने बड़ी श्रद्धापूर्वक मेरा अभिवादन किया और कहने लगे—हम लोग कई दिनों से आपके घर आने का विचार कर रहे थे । आज ये हो आयीं, अच्छा हुआ । बड़ी खुशी हुई आपके दर्शन करके ।....अरी असू, चाय बनाओ न आपके लिए ।

आप फारमेलिटी की चाय-वाय रहने दें । हम लोग चाय पी कर ही आ रहे हैं ।

पान तो खायेंगे । इसके बाद वह अपने पति की ओर मुखातिब होती है—जाओ, जरा जल्दी से दो पान तो ले आओ ।

वे चले गये । असिता चुप कैसे रहे । अतिथि के सामने गुमसुम बैठना अशिष्टता है । वैसे चुप रहने में उसे बड़ी शान्ति मिलती है । पर आज अभी तो मौन नहीं रहना है—घर में बैठे-बैठे इन्हें अच्छा नहीं लगता । कभी-कभार कोई न कोई कह देता है—यार, तुम तो बैठे-बैठे बीवी की कमाई खाये जाओ । मैं चाहती हूँ कि आप इन्हें कहीं किसी काम से लगा दें । कोई बड़ी नौकरी तो इन्हें मिलने से रही क्योंकि ये मैट्रिक भी नहीं

हैं । इतना कहने के बाद अचानक उसका चेहरा उतर जाता है ।

मैं अवश्य कोशिश करूँगा—यह कह कर मैं बुझ-सा जाता हूँ । इसके बाद ही मैं देखता हूँ, असिता आँचल के छोर से आँख की कोरें पोंछ रही है । वह फिर दुहराती है—जैसे भी हो, इन्हें कोई न कोई काम दिलवा ही दें ।

असिता, तुम चिन्ता न करो । मैं सब कुछ समझ गया हूँ । कुछ न कुछ हो जायगा ।

इसी बीच पान आ गये । पान खाकर मैं चला आया । असिता वीणा को गोद में लिये द्वार तक पहुँचा गयी ।

मैं पन्द्रह-बीस मिनिट में ही घर पहुँच गया । कोट उतार कर खूँटी पर टाँग दिया और बैठक में ही बैठ गया । अनायास ही मन में उठने लगा—असिता का पति मैट्रिक भी पास नहीं है । एक नान-मैट्रिक से उसका विवाह कैसे हो गया । इस विवाह से वह सुखी भी नहीं जान पड़ती । तभी तो बुझी-बुझी-सी दिखती है । रमा की हमजोली होते हुए भी उससे ज्यादा उम्र की दिखायी पड़ती है । इस उम्र में ही जरूरत से ज्यादा गम्भीर हो गयी है । नपे-तुले शब्दों में ही बात करती है । तभी रमा आकर कहती है—खाना तैयार है । चलो खा लो ।

मैं खाने की टेबिल पर जा बैठा । रमा थाली ले आयी । मैंने कहा—तुम भी अपनी थाली ले आओ । आज साथ-साथ खायेंगे । तुमसे कुछ पूछना है ।

रमा अपनी भी थाली ले आती है । खाना आरम्भ करने के पहले ही मैं पूछ बैठता हूँ—अच्छा, यह तो बताओ तुम्हारी असिता का एक नान-मैट्रिक से कैसे विवाह हो गया । क्या माँ-बाप की मर्जी से हुआ था यह विवाह ?

यह उन दोनों का प्रेम-विवाह है । बाकायदा शहनाई बजी थी । बारात आयी थी । भावरें पड़ी थीं, और माँ-बाप ने बेटी-दामाद के पैर

भी पूजे थे।

असिता को देखते हुए तो उसके पति में मुझे ऐसा कुछ दिखायी नहीं दिया जिस पर वह रीझ गयी है। बड़ा गया-गुजरा व्यक्तित्व है उसका। न तो डील-डौल ही कोई ठीक-ठिकाने का है और न चेहरे में ही कोई विशेषता है। जाने क्यों पसन्द आ गया उसे वह।

यह एक लम्बी कहानी है। खाना खा चुकने के बाद सुनाऊँगी। मुझको तो बेचारी असिता पर तरस आता है। यह सब देख कर ही तो भाग्य पर विश्वास करना पड़ता है।—इतना कह कर रमा ने एक लम्बी साँस ली।

हम दोनों खाना खा चुकने के बाद वहीं बैठे-बैठे बात करने लगते हैं। रमा कहती है—असिता ऐसे-वैसे घर की लड़की नहीं है। इसके पिता पुलिस के एक बहुत बड़े आफिसर थे। माँ-बाप की यह इक्लौती संतान थी। क्या कोई किसी लड़के का वैसा लालन-पालन करेगा जैसा इसका हुआ था. इसने इच्छा व्यक्त की नहीं कि तत्काल उसकी पूर्ति हुई। अच्छे से अच्छा खाना, बढ़िया से बढ़िया कपड़े और घर पर दो-दो मास्टर। यह बचपन से ही संगीत सीखती थी। गाती भी बहुत अच्छा थी। अपने क्लास में हमेशा फर्स्ट आती थी। यह सब तो था किन्तु घर का वातावरण अच्छा नहीं था। इसके पिता चौबीसों घंटे शराब में धुत रहते थे। माँ उन पर बहुत झल्लाती थी। कभी-कभी तो दोनों के बीच इतना तनाव आ जाता था कि दो-दो-चार-चार दिन तक आपस में बोल-चाल बन्द रहता था।—

रमा, तुम तो पूरा इतिहास बताने लगीं। यह बताओ कि इतने बड़े पुलिस आफिसर ने असिता का विवाह ऐसे अयोग्य वर से कैसे कर दिया। ऐसी क्या मजबूरी थी?

मैं उसी प्वाइंट पर तो आ रही थी कि तुमने बीच में ही टोंक दिया। मैं यह बताना चाहती हूँ कि बच्चों पर घरू वातावरण का जबर्दस्त प्रभाव

पड़ता है। असिता अलग कमरे में सोना चाहती थी। मगर लाड़ली बेटी को माँ ने कभी दूसरे कमरे में अलग नहीं सोने दिया। उसके पढ़ने-लिखने का कमरा जरूर अलग था। वह कोई दूध पीती बच्ची नहीं थी। मेरे साथ मैट्रिक में पढ़ती थी। बराबर अकेली अलग सो सकती थी। एक दिन वह मुझसे अकेले में साफ-साफ कह रही थी—आधी रात के बाद बत्ती बुझ जाती है और माँ उठ कर पिताजी के पास चली जाती हैं। कभी-कभी वह योंही जोर से चिल्ला पड़ती है तब माँ को अस्त-व्यस्त हालत में ही अपने पलंग पर लौट आना पड़ता है। सोलह-सत्रह वर्ष की लड़की कुछ भी न समझती हो, यह कैसे संभव है। देवीदत्त का असिता के घर में बहुत आना-जाना था। माँ का दूर के रिश्ते का वह भाई होता था। वह खुद भी मैट्रिक का विद्यार्थी था। किन्तु पढ़ने-लिखने में योंही था। वह शाम से ही आ पहुँचता। वहीं खाना खाता और असिता के कमरे में पढ़ने चला जाता। दोनों साथ-साथ पढ़ते रहते। असिता को उसके साथ बहुत माथा-पच्ची करनी पड़ती। आग और कपास कब तक बच कर रहते? आखिर एक दिन धुँआ उठ ही गया। कहते हैं इसके बाद हर तरह के उपाय किये गये कि गुपचुप दाग धो दिया जाय और चादर ज्यों की त्यों कोरी बनी रहे। परन्तु ऐसे दाग योंही नहीं छूट जाते वरन् उन्हें छुटाने को जितनी अधिक कोशिश की जाती है, उनका रंग उतना ही गाढ़ा होता जाता है। किसी भी तरह दाग नहीं छुटाया जा सका अन्त में असिता को देवीदत्त के साथ बाँध दिया गया।

तुम इसे प्रेम-विवाह कहती हो? प्रेम के लिए तो यहाँ कोई गुंजाइश ही नहीं है। शुरू से ले कर आखिर तक वासना के सिवाय और है क्या? यदि देवीदत्त का असिता के प्रति सच्चा अनुराग होता तो वह विवाह के पहले वह सब न करता जो उसने किया। उस दिन असिता का तन समर्पित हुआ था, मन तो कुंवारा ही था। और मैं तो अभी भी दावे के साथ कहता हूँ, उसका मन अब भी क्वांरा है, असमर्पित है। मंडप के नीचे

सात फेरे लगा देने से ही क्या तुम समझती हो देवीदत्त और असिता एक-दूसरे के सच्चे जीवन-साथी बन गये हैं ?—मैंने तनिक गहराई में उतर कर यह बात कही ।

जीवन-साथी तो हैं ही—क्या पति-पत्नी आपस में एक दूसरे के जीवन-साथी नहीं होते ?

पति-पत्नी जीवन की गाड़ी के दो पहिये हैं । यदि दो में से किसी एक पहिये में जरा-सी भी नुक्स होगी तो गाड़ी चलेगी नहीं, घिसटेगी । यह दूसरी बात है कि दुनिया इस घिसटने को ही चलना समझती रहे । स्नेह स्फुरण के लिए कुछ तो चाहिए ही—चाहे वह गुण हो, रूप हो अथवा वैभव हो । इनमें से क्या है देवीदत्त के पास ? वैवाहिक बंधन में जकड़ जाने के बाद भी पति-पत्नी सच्चे अर्थों में जीवन-साथी नहीं बन पाते । जीवन-साथी बनने के लिए तन की निकटता से कहीं मन की निकटता चाहिए । मन के तार जुड़ने से ही सच्चा सुख प्राप्त होता है । असिता, जो इस तरह वीराने की मनहूस सांझ-सी रीति-रीति दिखायी देती है, उसके मूल में यही लादा हुआ रिश्ता है ।

मैंने कभी असिता के वैवाहिक जीवन की तह में जाने की चेष्टा ही नहीं की । विवाह के बाद मेरा उसके यहाँ आना-जाना बहुत कम हो गया था । देवीदत्त घरजमाई बन कर रहने लगा था । असिता मैट्रिक पास करने के बाद कालेज में भर्ती हो गयी । पढ़ने में तेज तो थी ही, छः वर्ष में ही उसने एम० ए० कर लिया । मुझे भी अब याद आ रहा है कि विवाह के बाद वह पहली जैसी खुश दिखायी नहीं देती थी । उसकी वह शोखी भी जाने कहाँ गायब हो गयी थी । वह स्वयं अपने में ऐसी डूब गयी थी कि बाहरी दुनिया से जैसे उसका कोई नाता ही नहीं रह गया था । और तो और, एक ही शहर में रह कर भी वह मुझसे महीनों नहीं मिलती थी ।—रमा ने इस प्रकार असिता का जो कुछ मेरे सामने नहीं उघरा था, उसे भी उघार कर रख दिया ।

हाँ, तुमसे एक जरूरी सलाह लेनी है । असिता कल बार-बार चिरौरी करती रही कि जैसे भी हो मैं देवीदत्त को कहीं कोई नौकरी दिलवाऊँ उसे, यह मैं सोच नहीं पा रहा हूँ । प्रेस में प्रूफ-रीडर की जगह खाली है । तुम कहो तो कल से उसे बुला लूँ । शुरू में तो पचहत्तर रुपये ही दे सकूँगा ।—मैंने सहज भाव से रमा की प्रतिक्रिया जाननी चाही ।

बुलवा लो । कहने को तो हो जायगा कि प्रेस में नौकरी करता है ।

देवीदत्त दूसरे दिन से प्रेस आने लगा । मैंने उसे प्रूफ-रीडिंग की मोटी-मोटी बातें समझा दीं और उससे कह दिया—आप दोपहर को दो घंटे के लिए घर चले जाया करें । कभी-कभी आपको घर पर भी प्रूफ देखना पड़ेंगे । प्रेस बंद होते समय जो प्रूफ आपको मिलें, उन्हें आप अपने साथ ले जाया करें ।

देवीदत्त को काम करते एक महीना हो गया । उसमें कोई छल-छिद्र नहीं है—बड़ा सीधा है । चमक-दमक से कोसों दूर रहता है । किसी से व्यर्थ उलझने की कोशिश नहीं करता है । अपने काम से काम रखता है । बक-झक करने की उसकी आदत नहीं है । बड़ी शिष्टता से पेश आता है । प्रेस के अन्य कर्मचारियों की न तो उससे कोई खास दिलचस्पी है और न ही कोई शिकायत । कास्टिंग मशीन तभी टाइप ढालना बंद करती है जब उसका शीशा चुक जाता है ! उसी प्रकार देवीदत्त तभी अपनी गर्दन नीचे से ऊपर उठाता है जब टेबिल पर पड़े सारे प्रूफ चुक जाते हैं । उसका जीवन यंत्र के समान ही तो है । घर पर भी जो काम सामने आ पड़ता है उसे चुपचाप करना पड़ता है । उस दिन जब मैं असिता के साथ उसके घर पहुँचा था तो वह बच्ची को गोद में लिये उसे बहला रहा था । उसे असिता ने मेरे सामने जिस ढंग से पान ले आने को कहा था, वह मुझे कुछ अच्छा नहीं लगा था । वह उसी मुद्रा में पान लेने चला गया था । असिता जब उसे एक अपरिचित व्यक्ति के सामने इस प्रकार आदेश दे सकती है तो नित्य की जिन्दगी में वह ऐसे जाने कितने आदेश निःसंग

भाव से झेलता होगा। ऐसी स्थितियों से उसे छुटकारा भी तो नहीं मिल सकता। उसकी जिन्दगी का बनाव ही भिन्न प्रकार का है। पुरुष स्वामी होता है। नारी उससे प्यार पाती है, अधिकार प्राप्त करती है और साथ ही अनुशासित भी होती है। यहाँ उलटा है। असिता उसे जो कुछ जितना देती होगी, उसे उसी में निर्वाह करना पड़ता होगा। वह उसे पा ही सकता है, छीन नहीं सकता। यदि देवीदत्त ने सचमुच असिता को जीता होता तो इन्हीं स्थितियों में आज भी वह स्वामी ही होता। तब असिता अपने आप ही उसके संकेतों पर चलती और फिर वह जो आज्ञा देती उसका रूप भी दूसरा होता।

उस दिन शनिवार था। असिता का स्कूल दो बजे ही छूट गया था। वह सीधी मेरे पास आती है। उस समय मैं अपने आफिस के कमरे में अकेला था। उसे इस प्रकार अप्रत्याशित रूप में सामने देखकर एक क्षण को मैं चौंकता और दूसरे ही क्षण मुस्काते हुये कहता हूँ—बैठो असिता, अचानक कैसे आना हुआ? सब ठीक तो है न? वीणा तो अच्छी है? कहीं बीमार-ईमार तो नहीं होगी।

वीणा अच्छी है। मैं उसे आया के पास छोड़ आयी हूँ। आया घर के द्वार पर बैठी है। उसके स्वर में अधीरता झलक रही थी।

यह क्यों?

आप जरा इन्हें तो बुलाइये—फिर बताती हूँ।

मैं स्वयं देवीदत्त को अपने कमरे में ले आता हूँ। उससे असिता के बगल की कुर्सी पर बैठने को कहता हूँ। वह बैठ जाता है। अब असिता कहती है—अरे, अपनी चाबी तो दो। इन अपने आप बन्द होने वाले तालों के साथ कभी-कभी बड़ी मुसीबत खड़ी हो जाती है। आज ऐसा जान पड़ता है कि मैंने चाबी कमरे में ही छोड़ दी और बाहर का ताला चिटका कर स्कूल चली गयी। अभी जब घर पहुँची तो बेग में देखती हूँ कि चाबी नहीं है। आया को दरवाजे पर बैठाकर भागी-भागी आयी हूँ।

देवीदत्त चाबी देकर चुपचाप चला जाता है। उसके मुँह से एक शब्द तक नहीं निकलता।

वैसे मैं बाहर ही बाहर चाबी लेकर जा सकती थी, पर मैं जान-बूझ कर ही सीधी आपके पास आयी। आफिस के अन्य लोगों के सामने मुझे उनसे मिलना ठीक नहीं जँचा। मैं लोगों को यह जाहिर होने नहीं देना चाहती कि मैं उनकी पत्नी हूँ, हाई स्कूल में लड़कियों को पढ़ाती हूँ। आप व्यर्थ उन्हें स्वयं बुलाने गये। घंटी बजाकर चपरासी से बुलवा लेना था।

पर असिता, सत्य के मुँह पर कब तक चादर डाले रहोगी? जो कुछ भी जैसा है, वह एक दिन तो प्रकट होगा ही। यह सत्य है कि यथार्थ कुरूप होता है किन्तु उससे बचा भी तो नहीं जा सकता। ऊँट की कूबड़ कोई कब तक छिपायेगा।—मैंने उसे सही स्थिति का बोध कराया।

हो सकता है कि मुझे बार-बार आपके पास आना पड़े। आप इतनी दूर रहते हैं कि घर पर तो कभी-कभार ही पहुँच सकूँगी। प्रेस मेरे स्कूल के पास है। यहाँ तो जब चाहूँ तब आ सकती हूँ और आप जानते हैं कि किसी नौकर की पत्नी का उसके मालिक से बार-बार मिलने का लोग क्या अर्थ लगाते हैं। इसीलिए मैं कतई नहीं चाहती कि मेरे उनके सही रिश्ते की प्रेस के कर्मचारियों को जरा भी जानकारी हो। अच्छा, अब चलूँगी। —यह कह कर वह उठ खड़ी हुई।

बैठिये-बैठिये, चाय मँगवाता हूँ।

फिर कभी—प्लीज, मैं जाती हूँ। वह चली जाती है।

असिता यह भी नहीं चाहती कि उसके पति की हीनता का ढिंढोरा पिटे। औरत चाहे बदसूरत हो, अपढ़ हो, किसी हद तक गँवार ही क्यों न हो, यदि वह किसी संभ्रान्त व्यक्ति की सात-भांवरों वाली अर्द्धांङ्गिनी बन गयी है, तो समाज कभी उसे हेय दृष्टि से नहीं देखता। किन्तु यदि किसी का पति कम पढ़ा-लिखा हो, देखने-सुनने में भी यों ही हो, किसी अच्छे पद पर न हो और उसकी पत्नी साधारण अच्छे पद पर काम

करती हो तो लोगों के लिए वह चलता-फिरता अजायबघर बन जाता है। आँखें फाड़-फाड़ कर देखते हैं लोग उसे। उसे देखकर व्यंगात्मक ढंग से हँसना तो मामूली बात है। उस पर अँगुलियाँ उठती है, आवाजें कसी जाती हैं और जाने क्या-क्या होता है। देवीदत्त असिता के लिए चाहे जैसा हो किन्तु वह यह कभी बर्दाश्त नहीं करेगी कि उसके कारण वह उपहास का पात्र बने, लोग सदा उसे प्रश्न-चिन्हों में लपेटे रहें। यह सच है, दोनों के एक साथ, एक घर में रहने के बावजूद दोनों के बीच कहीं न कहीं अलगाव तो है किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं है कि इस अलगाव पर मक्खियाँ बैठें। अलगाव तो रहेगा।

असिता अब कभी भी आ जाती है। एक बजे से दो बजे तक प्रेस की छुट्टी रहती है। देवीदत्त खाना खाने घर चला जाता है और तीन बजे लौटता है। एक बजे असिता के स्कूल में लांग-रीसेज हो जाती है। मेरे पास आने में अब उसे कोई झिझक महसूस नहीं होती है।

वह जब भी आती है तो बिना किसी प्रसंग के मेरे गीत की कोई न कोई पंक्ति दुहरा देती है। उसका यह पूछना तो जैसे तकियाकलाम हो गया है—इस गीत की प्रेरणा कौन है। आपके गीत बड़े रोमांटिक हैं—उसमें जीवन के बड़े मधुर चित्र है। उस दिन जब असिता आयी तब मैं कुछ लिख रहा था। मैंने लिखना बन्द कर, कलम जेब में न लगा कर टेबिल पर ही रख दी। वह कलम हाथ में लेकर उसे उलटती-पुलटती हैं और पूछती है—इसी कलम से आपने इतने मधुर गीत लिखे हैं? हमेशा इस दो रुपये के राजा पेन से ही लिखते हैं? —इन्द्रधनुषी हँसी उसके होंठ चूमने लगी।

पार्कर पेन से ही सुन्दर कविता लिखी जाती है, यह मैं नहीं मानता। कविता कलम से नहीं, अंतर से उपजती है। कलम तो केवल उसे रिकार्ड करती है।

इसे मैं अपने पास रखूंगी। इससे मैं लिखा करूँगी! शायद कवि की

कलम का जादू मुझ पर भी चल जावे और मैं भी कविता लिखने लगूं। बिना मेरी स्वीकृति के ही वह उसे साड़ी के नीचे ब्लाउज के तिकोने गले के बीच में खोंस लेती है। और अपने बेग से काले रंग की कलम निकाल, मेरी ओर बढ़ा कर, अनुरागी स्वर में कहती है—यह लीजिए आप मेरी कलम। आप इससे लिखा कीजिए। राजा के बदले शेफर्स दे रही हूँ। आप घाटे में नहीं रहेंगे।—उसके भीतर जाने कब की सोयी शोखी जैसे आज जाग उठी है। वह मेरी ओर बड़े गौर से देख रही है। उसकी आँखें अभी-अभी कुछ बोल चुकी हैं, पर मैं यह नहीं कह सकता कि उनने क्या कहा।

इसे आप अपने पास ही रखें। मैं नहीं लूंगा। दूसरी आ जायगी।—यह क्या मैं बड़ा रूखा बोल गया। मुझे यह नहीं भूलना चाहिए कि मैं असिता से बात कर रहा हूँ। मैंने देखा, उसमें खुशी की जो हल्की-सी रोशनी हुई थी, वह बुझी जा रही है। उसका चेहरा उतरा जा रहा है। मैंने यह कह कर बात सँभाल ली—मैं इतनी कलम ले कर क्या करूँगा। सच, मैं कीमती कलम रखना पसन्द नहीं करता। खो जाती है तो मन को दुःख होता है। आप कोई अन्यथा अर्थ न लें। वह फिर जहाँ की तहाँ लौट आती है।

वह नहीं मानी। जैसे कोई जबर्दस्ती नन्हें बच्चे को झुनझुना पकड़ा देता है, उसी प्रकार उसने मेरे हाथ में अपनी कलम पकड़ा दी। उसकी अंगुलियाँ मेरी अंगुलियों से छू गयीं। मुझे ऐसा एहसास हुआ कि उसका क्वाँरा मन मेरे मन को छू रहा है। मैंने शेरवानी के जेब में कलम खोंस ली। तभी वह कहती है—आपने मेरा मन रख लिया, यही क्या कम है। मैं सचमुच कृतार्थ हो गयी। मेरी हठीली मनुहार जब आपकी अंगुलियों में कलम पकड़ा रही थी, उस समय मन पीपल की पत्ते की तरह डोल रहा था। अब फिर कभी अधिकार जताने की कोशिश न करूँगी।

असिता, तुम बड़ी वैसी हो—जरा सी बात में पारे की तरह ढुलक जाती हो। दो क्षण रुक कर मैं संभालता हूँ—आप से तुम पर आ गया, माफ करना।

मैं तो स्वतः चाहती थी कि यह आप की दीवार जल्दी हट जाय। आज मैं आप से तुम बन कर आपके और करीब हो गयी हूँ। मैं चाय पीना चाहूँगी।

मैंने देखा, उसके आँचल का छोर सिर से खिसक कर कंधे पर आ गया है और उसके जूड़े का फिदे गुलाब मुझे साफ दिखायी दे रहा है। काले बादलों के बीच मानों शुक्र नक्षत्र का उदय हुआ हो।

चाय आ गयी हम दोनों ने चाय पी। अच्छा अब चलती हूँ—कह कर वह उठ खड़ी हुई।

दो मिनट तो और रुको। तुमने मुझे यह जो अपनी कलम दी हैं, मैं वायदा करता हूँ कि इससे मैं केवल गीत ही लिखूंगा। जिस दिन गीत लिख जायगा तुम्हारे घर आ कर सुनाऊँगा।

आप क्यों मेरे घर आयेंगे—मैं स्वयं आ जाऊँगी। रमा से भेंट भी हो जायगी। अच्छा, चलती हूँ, देर हो रही है। वह चली गयी पर मुझे ऐसा लग रहा है कि उसका मन यहीं इसी कमरे में भटक रहा है।

इस बार वह दूसरे दिन ही आ गयी। आज वह हल्के धानी रंग की साड़ी में है। सर्फ से धुलने पर जिस प्रकार मैले कपड़े में पुनः चमक आ जाती है, उसी तरह दिन-प्रतिदिन उसके चेहरे पर निखार आता जा रहा है। अधजले कोयले पर जो राख की परतें जम गयी थीं, वे एक हल्के-से झोंके से ही हट गयी है और दबी-छिपी आग फिर दहकने लगी है। वह कमरे में आ कर मेरे सामने उसी तरह बैठ गयी जैसे रमा आ कर बैठ जाती है। उसका प्रश्न था—गीत लिखा आपने? मैं इसी विश्वास को ले कर आयी थी कि रात आप ने अवश्य गीत की रचना

की होगी।

मैं कल ही कह चुका हूँ कि गीत हृदय से निकलता है–कलम से नहीं। बसन्त की बारात आ जाने पर कलियों के घूँघट अपने आप खुल जाते हैं। जब कोई मेरा दिल गुदगुदा देगा तो गीत अपने-आप कागज पर उतर आयेगा।

यदि मुझे उस चोर का पता लग जाता तो मैं उसे अभी पकड़ बुलाती और कहती–अरे गुदगुदा दे न....।

और यदि मैं कह दूँ कि चोर तो सामने बैठा है, तब–मैं हँस पड़ा और मुझसे भी अधिक जोर से उसने हँस दिया।

उसने जेब से कागज का एक डिब्बा निकाल कर सामने रख दिया, और बोली–मैं आपके लिए संदेश लायी हूँ। मिठाइयों में यह आपको अधिक प्रिय है—है न?

है तो....।

तो खाइये।

वह डिब्बा खोलती है। मैं आज्ञा शिरोधार्य कर खाने लगता हूँ। वह भी खाने लगती है। मैं पास में रखे झँझर से पानी निकालूँ कि इसके पहले ही वह गिलास में पानी ले कर मेरी ओर बढ़ा देती है। मैं पानी पी कर, जेब से रूमाल निकाल ओंठ पोछता हूँ। रूमाल टेबिल पर ही छूट जाता है। गिलास में थोड़ा पानी बचा रह जाता है। बिना झिझके वह मेरा जूठा पी लेती है। मैं सन्न रह जाता हूँ। यह उसके लिए जैसे कोई बात ही नहीं है। अभी पहला झटका ही भूले नहीं पा रहा था कि दूसरा झटका लगता है–उसने अपने पैर का तलवा मेरे दाहिने पैर के पंजे पर रख दिया है। मैं दो क्षण ठहरता हूँ कि शायद अनजाने में पड़ गया हो। किन्तु वह तो अब भी रखा है। अरे यह क्या—अब तो धीरे-धीरे पंजे पर अंगुलियाँ भी मचलने लगी हैं, और मुझसे वह एक अजीब लहजे में कहती है—मैंने आपकी पूरी पुस्तक एक साँस में पढ़ ली। पुस्तक क्या

पढ़ ली, आपको पढ़ लिया। आप बाहर से जैसे स्निग्ध-मधुर हैं, वैसे ही भीतर से भी। इसी बीच मैंने अपना पैर जूते में डाल दिया। करेंट खत्म हो गया। इसके बाद ही असिता मेरा रूमाल उठा, उसे हाथ में ले कर कहती है—मैं यह रूमाल अपने पास रखूंगी। आपको इसमें कोई आपत्ति तो नहीं? कहीं आप यह न कहने लगें कि उस दिन जबर्दस्ती कलम ले गयी थी, आज रूमाल ले चली।

किन्तु तुम इस गन्दे रूमाल का करोगी क्या? देखती नहीं, उस पर पान के कितने सारे दाग हैं। मैं तो समझता था कि कवि ही आधा पागल होते हैं, तुमने उनके भी कान काट दिये।

यह गन्दा तो है किन्तु आप क्यों भूलते हैं कि इसमें आपके ओंठों का स्पर्श भी है। और इस पर जो पान के दाग हैं वे अनुराग के प्रतीक हैं। विवाह के शुभ अवसर पर इसीलिए बधू को लाल कपड़े पहिनाये जाते हैं। मैंने इस रूमाल की साफ-साफ व्याख्या कर दी और व्याख्या मुझे मजबूर होकर करनी पड़ी। इसीलिए किसी ने ठीक ही कहा है कि कवि तो केवल कविता रचता है, उसकी व्याख्या वह नहीं कर पाता।

मैं असमंजस में पड़ा रह जाता हूँ और वह रूमाल धीरे से अपने बेग में रख लेती है। मुझे कुछ बोलने का अवसर ही नहीं देती। इसके बाद वह चली गयी। आज मैं उसके सम्बन्ध में ऐसा कुछ सोचने लगता हूँ जो इसके पहले मैंने कभी नहीं सोचा था—बड़ी तेज औरत है। बेचारे देवीदत को उस रात इसी ने फुसलाया होगा। वह नये गरम चादर की तरह ओढ़ लिया गया होगा।

दूसरे दिन मैं प्रतीक्षा में था, असिता अभी तक नहीं आयी। एक बजने के बाद कई बार मेरी नजर घड़ी पर गयी, कान द्वार पर परिचित आहट सुनने को व्यग्र रहे पर वह नहीं आयी। आज चार-पाँच दिन के बाद आयी है। मैं उसे देखता रह जाता हूँ। सलवार-कुर्ते में है। वह पीठ पर लहराती दो काली नागिनों के मुँह कुर्ते के रंग से मैच करनेवाले

फीतों से बाँध दिये गये हैं—कहीं वे एकदम से किसी को डस न लें। काजल आँज लेने से उसकी आँखें कानों के और अधिक नजदीक खिसक आयी है और वह सचमुच लुभावनी बन गयी है।

आज तो तुम पहिचान में ही नहीं आ रही हो, असिता। यह क्या सूझा तुम्हें—

आप तो देख ही रहे हैं कि आपके निकट आ कर अब मैं वह असिता नहीं रही जिसे आपने पहले दिन अपने घर में देखा था—बुझी-बुझी-सी उदास। मेरे मन-प्राणों ने अब एक नया मोड़ लिया है। मैं नये सिरे से जिन्दगी जीना चाहती हूँ। वह सब कुछ समेट लेना चाहती हूँ जो मुझे अब तक अप्राप्य रहा है। हो सकता है कि मैं अंत में प्यासी ही रह जाऊँ किन्तु प्यासे को तो ओस की एक छोटी-सी बूँद भी अमृत के समुद्र की तृप्ति देती है—यहीं बात खतम करके वह मेरे सामने एक साफ सुफेद रूमाल रख देती है—लीजिए, मैं आपको गन्दे-दगीले रूमाल के बदले यह नया रूमाल दे रही हूँ।

मैं उसे उठा कर देखने लगता हूँ। बाहर रास्ते पर चल रहा व्यक्ति अनायास बेमौसम बदली से कैसे बच सकता है—भीगेगा ही। मैं अकारण ही उस रूमाल को अपने ओठों से लगा कर जूठा कर देता हूँ। उसमें एक भीनी-भीनी सुगंध भी है। कोई इत्र अवश्य छिड़का गया है उस पर। वह गंध मेरी साँसों में बस जाती है।—ठीक है, यह एकदम कोरा, नया, गुलाब के इत्र से भीगा बड़ा प्यारा रूमाल है पर इसमें वह विशेषता कहाँ है जो तुमने मेरे उस पुराने रूमाल में देखी थी और उसे जबर्दस्ती उठा ले गयी थीं। इसमें असिता तो है किन्तु असिता के भीतर की असिता तो कहीं दिखायी नहीं देती।—यह कह कर मैं रूमाल अपनी जेब में रख लेता हूँ।

जूठी असिता के ओठों का स्पर्श उसमें नहीं है, यह सच है। उसका आग्रह भी आप में नहीं होना चाहिए। मैंने तो अपना निर्मल मन उस

रूमाल में बाँध कर आपको सौंपा है। दगीली चादर आपको मैं कभी नहीं उढ़ाऊँगी।—उसके भड़कीले लिबास को देख कर कौन विश्वास करेगा कि वह इतनी वजनदार बात भी कह सकती है।

असिता, क्या तुम समझती हो मैं बेदाग हूँ—बिलकुल वैसा जैसा तुम मुझे देखती हो। फूल-पत्ते में काँटे छिप तो जाते हैं परन्तु उनका अस्तित्व नहीं नकारा जा सकता। जिन्दगी के दाग धुल कर छूट जायें यह दूसरी बात है किन्तु वह एकदम बेदाग तो नहीं हो जाता। समाज की आँखें जिन दागों को नहीं देख पातीं वे दाग, दाग रह जाते हैं। समय सब कुछ पूर देता है। तुम व्यर्थ ही अपना मन हल्का न करो—।

मैं क्या मन हल्का करूँगी—मैं तो स्वयः भीतर-बाहर से हल्की हूँ। मैं भारी बन कर किसी के जीवन-मन्दिर में मूर्ति बन कर इस तरह स्थापित भी नहीं होना चाहती कि मात्र दर्शन की वस्तु बन कर रह जाऊँ। मैं अच्छी-बुरी जैसी भी हूँ, वैसी ही रहना चाहती हूँ। आपने मुझे इतने नजदीक कैसे आने दिया, इस पर मुझे स्वयं आश्चर्य है। यह सब कैसे हो गया ?—इसके बाद वह मेरी कलम से, जो अब उसकी हो गयी है, मेज पर पड़े कागज यों ही गोदने लगती है।

असिता, मन के रिश्ते बनाने से नहीं बनते, वे अपने आप बनते हैं। आकाश में सतरंगी जयमाला पृथ्वी का वरण करने अपने आप बनती है, कोई उसे बनाता नहीं। जब तुम मेरे पास होती हो तो मुझे अच्छा लगता है किन्तु तुम्हारे जाने के बाद मैं किसी रीतेपन का अनुभव भी नहीं करता।

उस दिन असिता जरूरत से ज्यादा मेरे पास बैठी रही। न तो उसे समय का कुछ ध्यान रहा और न मैं ही यह अनुभव कर पाया कि घड़ी के काँटे बड़ी तेजी से आगे बढ़ गये हैं। मैं आज तक कभी उसे प्रेस के फाटक तक छोड़ने नहीं गया था। हम दोनों साथ-साथ कमरे से निकलते हैं। सामने देवीदत्त अपनी टेबिल पर बैठा प्रूफ देख रहा है। असिता उस पर एक नजर डाल, बिना कुछ बोले आगे बढ़ जाती है। मैं उसे फाटक

तक छोड़ आता हूँ।

रात्रि को जब वे दोनों मिले तो देवीदत्त यहाँ-वहाँ की बातों के बाद असिता से पूछता है—आज तुम प्रेस क्यों आयी थीं ?

केशव जी से भेंट करने।

क्या काम था ?

कुछ नहीं, यों ही चली गयी थी।

इसके पहले भी गयी थीं ?

कई बार—क्या मुझे वहाँ नहीं जाना चाहिए ?

न जाओ तो अच्छा है।

क्यों ?

यह सही है कि मैंने अपने साथ काम करने वालों में से किसी को भी यह जाहिर नहीं किया है कि मेरी पत्नी कौन है ? कहाँ काम करती है कितना कमाती है ? किन्तु एक औरत को ले कर प्रेस-कर्मचारियों के बीच बहुधा कानाफूसी हुआ करती है। अब मेरी समझ में आया कि वह और कोई नहीं तुम हो।

मैं वहाँ कोई दिन भर तो बैठी नहीं रहती—लांग रीसेज के पन्द्रह-बीस मिनिट ही तो कभी-कभी वहाँ व्यतीत करती हूँ। क्या यह कोई गुनाह है ? कौन किसके मुँह में लगाम लगा पाता है ? बकने वाले बकते ही हैं। क्या तुमको ले कर मेरा मजाक नहीं उड़ाया जाता ? मैं इस सब की चिन्ता नहीं करती।

पर तुमने मुझसे यह सब छिपाया क्यों ?

इसमें छिपाने की कोई बात ही नहीं है। यह कोई जरूरी नहीं कि मैं तुम्हें हर बात का हवाला दिया करूँ।

मेरा मतलब यह नहीं है कि तुम केशव जी से न मिलो। मिलो—घर जा कर मिलो। तुम्हारा बार-बार प्रेस आना उनके लिए भी ठीक नहीं है।

इसकी चिन्ता तुम क्यों करते हो ? मैं कोई दूध पीती बच्ची नहीं हूँ। अपना भला-बुरा मैं अच्छी तरह समझती हूँ। मैं उन पर आँच नहीं आने दूँगी पर मैं उनसे मिलूंगी जरूर और प्रेस में ही मिलूंगी।—यह कह चुकने के बाद असिता ने अपना मुँह फेर लिया और सो गयी। देवीदत्त के भीतर का जो पुरुष गरम लोहे की तरह लाल हो गया था, असिता ने पानी के एक छींटे से ठंडा कर दिया।

खाना खा कर जब मैं प्रेस जाने के लिए कपड़े बदल रहा था तो रमा आ कर कहती है—लो, आज यह नया पुलओवर पहिन लो। इसे छोड़ जाओ। दोपहर को लक्स से धो दूँगी, मैला हो गया है।

अरे, यह कब बुन डाला तुमने ? अच्छा।. बुना गया है। एकदम नई डिजाइन है। सफेद ऊन का स्वेटर यह पहली बार बनाया है।

मुझे घर-गृहस्थी के कामों से फुर्सत ही कहाँ मिल पाती है। आये दिन कोई न कोई मेहमान आता ही रहता है। इसे मैंने नहीं, असिता ने बुना है। एक दिन आ कर नाप ले गयी थी। केवल सात दिन में बुन डाला। कल ही आ कर दे गयी है। मैंने चाहा कि कम से कम उसे ऊन की कीमत दे दूँ। उसने लेने से साफ इन्कार कर दिया बल्कि उल्टी मुझ पर बिगड़ती रही—क्या मेरा कोई अधिकार नहीं तुम लोगों पर ?

मैंने स्वेटर पहिनते हुए कहा—दरियादिली धन में नहीं, मन में रहा करती है रमा। आखिर है तो बड़े बाप की बेटी।—और मैं प्रेस चला आया।

मुझे ऐसा लग रहा था कि स्वेटर के एक-एक घर में असिता बैठी है। खूब डोरे डालना जानती है। उसका हर काम निराला होता है। एक निशाने से उसने एक साथ दो चिड़ियाँ मार डालीं। मैं तो पहले से ही मरा हुआ-सा था, अपनी चुटकी भर सूझ से उसने रमा का मन भी जीत लिया।

पिछले एक हफ्ते असिता नहीं आयी। लाँग रीसेज में बैठी स्वेटर बुनती रही होगी। चूँकि मेरे लिए स्वेटर बुनी जा रही थी इसलिए उसके मन में कहीं न कहीं तो मैं था ही। कभी-कभी दूर की यह निकटता बड़ी भली लगती है।

हमेशा की भाँति एक बज कर दस मिनिट पर असिता आती है। रात जो गीत लिखा था, मैं उसे फिर से साफ अक्षरों में उतार रहा था। मैं उसे देखते ही कलम रख देता हूँ। मुझे देखते ही उसकी आँखों से जैसे मंगल बरसने लगता है। वह खिल उठती है—क्या लिख रहे थे आप ?

तुम्हारा गीत।

मेरा गीत ?—किंचित विस्मय भरे स्वर में कहती है।

हाँ-हाँ तुम्हारा गीत—तुम्हारी कलम से लिखा गया पहला गीत।

तो लाइये, दीजिये मुझे।

दो मिनिट रुको। पूरा लिख कर अभी देता हूँ।

मैंने गीत लिख कर उसके हाथ में थमा दिया। वह ऐसी भाव भरी मुद्रा से उसे पढ़ने लगती है जैसे प्रथम बार अपना एम० ए० का सर्टिफिकेट पढ़ रही हो। एक साँस में उसने उसे पढ़ लिया। पढ़ती जाती थी, मुस्कराती जाती थी।

कहो, कैसा लगा ? पसन्द आया ?—मैंने यों ही पूछ दिया।

क्या आप सचमुच ऐसा अनुभव करते हैं ? क्या वास्तव में जीवन भर गीत की इस प्रथम पंक्ति का निर्वाह करेंगे आप—दो दिल मिल कर इस जीवन में कब विलग हुए बोलो रानी। कविता यथार्थ की आग में जल कर कभी-कभी ठंडी हो जाती है। कभी-कभी तो वह आँच भी बर्दाश्त नहीं कर पाती इसलिए इतना जोर दे कर पूछ रही हूँ।

मेरा हर गीत ईमानदार है। उसमें कल्पना का परिधान हो सकता है—प्राण तो मेरे अपने ही हैं। मैं जो जीता हूँ, जो भोगता हूँ वही लिखता भी हूँ इसीलिए अपरिचय में मेरे गीत तुम्हारे अन्तर्मन को छू सके।

मेरे इस कथन के बाद, बीच में जो हल्की-सी बदली छा गयो थो, छंट जाती है। आसमान फिर साफ हो जाता है। फलों के भार से डाली का झुकना तो सभी ने देखा है, मैंने आज पहिली बार फूलों के भार से डाली को झुकते देखा—असिता मेरा हाथ खींच कर उस पर अपना सिर रख देती है और फफक-फफक कर रोने लगती है। मेरे हाथ का पंजा उसके गरम आँसुओं से भीग गया है। टेबिल पर झुका उसका सिर मैं तुरन्त ऊपर उठा देता हूँ—यह क्या पागलपन है ? क्या हो गया है तुम्हें ? क्यों रोने लगीं ? उसकी आँखों से अब भी आँसुओं की धारा बह रही थी। उठ कर अपने रूमाल से उसके आँसू पोंछ देता हूँ।

आज जाने क्यों मुझे अपने आप पर रोना आ गया—अपनी दगीली जिन्दगी पर। इस तरह मैं कभी किसी के सामने नहीं रोयी। पर आज मैं खुशी में रोयी थी—दुखी हो कर नहीं। नित भीख में पाँच पैसे पाने वाले याचक को एकदम से पाँच रुपये मिल जाने पर उसे जो खुशी होती है, उसी तरह की खुशी थी मेरी—सचमुच आज बहुत खुश हूँ।

गीत तो मैंने लिख दिया—इसे तुम गाओगी कब ?

इतवार को घर आ कर सुनाऊँगी। और इस गीत का पुजापा भी आपको दूँगी। मेरी पूजा इसी गीत में केन्द्रित है। यह मेरा पूजा-गीत है।

सचमुच असिता, तुम जरूरत से ज्यादा भावुक हो। और भावुकता हँसाती कम है, रुलाती ज्यादा है।

यह आपसे अधिक मैं फील करती हूँ, पर—

तुम्हारी समता तुम से ही हो सकती है, किसी दूसरे से नहीं—इतने दिनों से मेरे लिए यह स्वेटर बुनती रहीं और मुझे कानोकान खबर नहीं। बड़ा बढ़िया स्वेटर बुना है तुमने। इसे पहिनने के बाद से तो मुझे ऐसा लगता है कि मैंने तुमको ही पहिन लिया है। यह कह कर अनायास ही हँस पड़ता हूँ।

यह मात्र कवि-कल्पना है। रमा का जो कुछ है, उसे छूने का मुझे कोई अधिकार नहीं। वह उसका अपना है, मेरे तो केवल गीत हैं।

असिता इलेस्टिक की तरह फैलती है और फिर सिकुड़ जाती है। मंझधार की स्थिति है उसकी। उस दिन उसने अपने पति से बड़ी निर्भयता से यह बता दिया था कि वह अपने मन की रानी है। वह उसके बीच नहीं आ सकता। वह उसे ढो रही है—उसे जिया कब है। पर यह भी उचित नहीं है कि वह हर बात अनसुनी करती रहे और इस प्रकार दुतकार दिया करे। मैं सहज भाव से कह उठता हूँ—गीत तो तुम्हारे हैं और गीतकार उसने क्या गुनाह किया है ?

उसने अपनी घड़ी पर दृष्टि डाली—अरे, आज भी देर हो गयी। आप मुझे हमेशा ऐसा उलझा लेते हैं कि....।

जाते-जाते उसे फिर याद दिलाता हूँ—इतवार को आना न भूलना। देवीदत्त अभी तक घर आये ही नहीं। उन्हें भी साथ लाना और वीणा तो आयेगी ही।

उनका नहीं कह सकती, मैं जरूर आऊँगी, और आपकी वीणा भी। वह चली जाती है।

वह इतवार को शाम को ही आ गयी है। मुझे यह पता नहीं था कि उसी दिन शरद की पूर्णिमा भी है। वीणा बच्चों के साथ जा कर खेलने लगती है और बैठक में हम तीनों ही रह जाते हैं—असिता, रमा और मैं।

अरी असिता, आज तो शरद पूनो भी है। अभी हम लोग छत पर चल कर दूधिया चाँदनी में नहायेंगे। गीत-गात का बड़ा अच्छा वातावरण रहेगा। सम्भव है, जस्टिस दयाल भी अपनी फेमिली के साथ आयें। वे भी इनके गीतों के बड़े प्रेमी हैं। मिसेज दयाल ने तो इनके कई गीत टेप भी कर लिये हैं। जब मन में आता है, इन्हें सुन लेते हैं वे लोग।

तो क्या मुझे उनके सामने गाना पड़ेगा। रमा, मैं न गा पाऊँगी। मैं किसी दूसरे के सामने गाना पसन्द नहीं करती। बड़ी झिझक लगती

है मुझे। दूसरे, मुझे ऐसा लगने लगता है कि अब यह गीत मेरा अपना कहाँ रहा। उसके तो कई भागीदार हो गये।

हमने तुम्हारे अलावा किसी को नहीं बुलाया है। वे आयेंगे ही यह अभी नहीं कहा जा सकता। यदि वे आये भी तो तुम्हें उन लोगों से मिल कर बड़ी प्रसन्नता होगी। बड़े अच्छे लोग हैं। तुम अभी से इस तरह क्यों मुरझा रही हो।

यदि मिसेज दयाल टेप रिकार्डर ले आयीं तो वे तुम्हें भी अवश्य टेप करेंगी। सचमुच तुम बहुत अच्छा गाती हो—तुम्हारे मधुर स्वर इनके गीतों में नये प्राण फूँक देते हैं।

रमा, तुमने एक और मुसीबत खड़ी कर दी। मैं अपना गीत किसी कीमत पर भी टेप नहीं होने दूँगी। टेप सुनने के बाद हर व्यक्ति पूछेगा—किसने गाया है। गीतकार के साथ मैं भी विज्ञापित होने लगूंगी। मैं इस तरह विज्ञापित नहीं होना चाहती।—उसने गंभीरता के साथ रमा को समझाने की चेष्टा की।

फिर वही बात—जन्म के पहले ही नामकरण होने लगा। आने तो दो। फिर देखेंगे। अरे हाँ, देवीदत्त क्यों नहीं आये ?

मैंने पहले ही कह दिया था कि वे शायद ही आ सकें। फिर कभी चलूंगा कह कर टाल गये। वे बहुत कम मेरे साथ बाहर आते-जाते हैं। उन्हें तो मेरे साथ पिक्चर जाने में भी झिझक होती है। किसी दिन जबर्दस्ती पकड़ लाऊँगी।

आज असिता सफेद साड़ी-ब्लाउज में है। माथे पर चन्दन की पोली बिन्दी के बीच केवल जरा-सा सिन्दूर दमक रहा है। सुनहरी सन्ध्या ने जैसे डूबते सूर्य को कुछ क्षणों के लिए रोक लिया है। शुभ्र ज्योत्स्ना में यह श्वेत-वसना नारी असिता नहीं रहेगी—चाँदनी-सी खिल पड़ेगी।

अरे हाँ रमा, आज क्या खिला रही हो अपनी असिता को ?

कहते हैं, शरद पूर्णिमा के चन्द्रमा की किरणों से अमृत बरसता है।

छत पर खीर और दूध लिये चलती हूँ। खीर खा कर दूध पियेंगे हम लोग। आज इसी का महत्व है। वैसे खाना भी बना है।

जस्टिस दयाल के न आने से असिता को खुशी हुई। हम लोग छत पर आ चुके हैं। ऐसा लग रहा है कि हम किरणों की नाव पर बैठे चाँदनी के फेनिल समुद्र में बहे जा रहे हैं। मुझसे गीत सुनाने का आग्रह किया गया है। मैं बिना किसी भूमिका के गीत शुरू करता हूँ—सामने बैठी रहो तुम गीत मैं गाता रहूँगा। गीत गाते-गाते मैं सचमुच गीत में डूब जाता हूँ। सब ओर चाँदनी ही चाँदनी है, और दो सजीव कवितायें अपनी मेरी कविता सुना रही हैं। गीत समाप्त होते ही चार तालियाँ अपने-आप बज उठती हैं और मुझे ऐसा भान होता है—अभी-अभी चिड़ियाँ बोली हैं।

किससे सामने बैठे रहने को कहा जा रहा हैं कविराज, यहाँ एक छोड़ दो-दो हैं।—रमा मुझे झकझोरती हुई कहती है।

मैंने नाम तो किसी का भी नहीं लिया—केवल अपनी प्रेरणा से कहा है। अच्छा असिता, अब तुम सुनाओ मेरा ताजा गीत।

असिता गा चुकी। आज गाते समय वह जाने क्यों अत्यधिक लजाती रही। उसका स्वर आज ज्यादा दर्दीला था। मैं असिता से कहता हूँ—तुम्हारे करुण स्वर ने गीत को और भी अधिक करुण बना दिया है। दूर से कोई सुनता तो कहता, जूथिका राय मीरा का भजन गा रही है।

आपको चने के झाड़ पर चढ़ाना खूब आता है।

सचमुच असिता, ऐता लगता था कि कहीं गाते-गाते तू रो न दे—बड़े भरे गले से गाया तूने आज।—रमा उसके कंधे पर हाथ रख कर कहती है।

असिता ने हम दोनों के एक-से कमेंट पर एक भी शब्द नहीं कहा। वह कुछ खोई-खोई-सी जरूर है।

बहुत रात बीत चुकी थी। रमा ने उससे कहा—अब कहाँ जाती

हो। यहीं सो जाओ। सबेरे चली जाना। वीणा भी सो गयी है। घर जाकर सोना ही तो है—।

हाँ, सोना ही तो है पर मैं घर जा कर ही सोऊँगी। मैं उनसे यह कह कर नहीं आयी हूँ कि रात यहीं रहूँगी।—नहीं तो ऐसी क्या बात थी। आपको कष्ट तो होगा ही, चलिए मुझे छोड़ दीजिए। गली के मोड़ पर ही छोड़ कर चले आइएगा।

रास्ते में वह मुझे एक सफेद रंग का कोरा लिफाफा थमा कर कहती है—इसे मैं आपको घर पर नहीं दे पायी। इसे मैं रमा के सामने नहीं देना चाहती थी। इसमें मैं बन्द हूँ। अकेले में खोल कर देखियेगा कि क्या इसमें वही असिता है जिसे आप चाहते हैं। मैं उसके लाख मना करने पर भी उसे घर तक पहुँचा आया।

रास्ते भर में बड़े असमंजस में पड़ा रहा—आखिर इस लिफाफे में ऐसा क्या है जो उसने मुझे अकेले में खोलने को कहा। असिता और रमा के बीच ऐसी कोई दीवार तो मुझे दिखायी नहीं देती। असिता इस लिफाफे में बन्द रहस्य रमा पर क्यों प्रकट नहीं होना देना चाहती—आखिर क्यों ?

रमा अभी सोयी नहीं थी। मेरा बिस्तर फटकार रही थी। मैं वहीं उसके पास जा कर खड़ा हो जाता हूँ—देखती हो, असिता ने अभी रास्ते में मुझे यह लिफाफा दिया है। कहती थी—इसमें मैं बन्द हूँ। अकेले में खोलना। पर मैं इसे तुम्हारे सामने खोल रहा हूँ। असिता का ऐसा क्या है जो तुम्हें नहीं मालूम।

मैंने लिफाफा फाड़ दिया। देखता हूँ, लाल गुलाब की दो-चार पँखुड़ियों में चोटी के छोर का कटा हुआ कुछ हिस्सा लिपटा है। चोटी का वह हिस्सा इत्र में हल्का-सा भीना हुआ है। लिफाफा खुलते ही सारा कमरा सुगंध से भर गया है। एक गुलाबी कागज के टुकड़े पर बड़े-बड़े सुन्दर अक्षरों में लिखा है—पूजा के फूल और पुजारिन।

मैं लिफाफा रमा के हाथ पर रख देता हूँ। पल भर में ही वह सब पढ़-समझ लेती है और उसके मुँह से बरबस निकल पड़ता है—बेचारी असिता।

●●

वह एक क्षण

उस दिन के बाद फिर तुम मेरे पास नहीं आयीं। सात नवम्बर का ही मनहूस दिन था वह। आज भी सात नवम्बर ही है—पूरे बारह माह हो गये। तुम्हारा यह न आना मुझे अब भी खल रहा है। खल ही नहीं रहा है, कचोट रहा है, साल रहा है। मैं किसी से कुछ कह भी तो नहीं सकता। किससे कहूँ? तुमसे जरूर बहुत कुछ कहने को जो होता है। शब्द भीतर घुटते रहते हैं—जैसे किसी ने मुँह में चुसनी डाल दी है। मैं चाह कर भी बोल नहीं पाता।

तुम आखिर क्यों नहीं आयीं? क्या तुमने मुझे गुनहगार समझा? समझा ही नहीं, मान लिया है। तभी तो तुम नहीं आयीं। वैसे मैंने कोई गुनाह नहीं किया। अपराध की कोई सुनियोजित योजना मेरे मन में नहीं थी। छोटी-सी चूक जरूर हो गयी थी। उसके लिए भी मैं स्वयं को दोषी नहीं मानता। अचानक चटक कर फूल उठने वाले उस अनाहत एक क्षण के लिए तुम भी जिम्मेवार नहीं हो। देहरी पर पैर पड़ते ही वापस

लौट पड़ा था मैं। तुम मेरी क्लीनिक में थीं, किसी एकान्त जंगल में नहीं।

तब से आज तक तुम मुझे कहीं दिखायी भी नहीं दीं। सड़क पर, दुकान में, सिनेमा में, होटल में, स्टेशन पर, कहीं भी नहीं। तुम इस समय कहाँ हो, यह भी मैं कैसे कह सकता हूँ? यदि सचमुच तुम छः लाख की आबादी वाले इस नगर की निवासिनी ही हो, तो भी मैं तुम्हें कहाँ खोजने जाऊँ? तुम किस मुहल्ले की किस गली में रहती हो, तुम्हारा मकान नम्बर क्या है, इस सबसे भी मैं अनभिज्ञ हूँ। मैं यह भी नहीं जानता कि तुम्हारे पिता का क्या नाम है? तुम्हारे घर में कौन-कौन हैं? तुम्हारे पिता क्या हैं? क्या करते हैं? मैं कोई पुलिस का सिपाही तो नहीं जो राह चलते चाहे जिसका पता-ठिकाना पूछूँ, हुलिया दर्ज करूँ। हाँ, मैंने क्लीनिक के छपे फार्म पर तुम्हारा नाम अवश्य लिखा था—अलका सेन। वह अब भी लिखा रखा है—जैसे का तैसा। मैंने उसे फाइल से अलग निकाल कर मेज पर बिछे शीशे के नीचे बड़ी जतन से रख छोड़ा है। इस तरह शीशे पर नजर पड़ते ही मैं अपने चेहरे के साथ-साथ तुम्हें भी देख लेता हूँ।

जब मैं अकेला बैठा होता हूँ, तब तुम बहुधा मेरे साथ हो जाती हो। मेज के साफ-सुथरे शीशे पर अपने-आप तुम्हारी तस्वीर उतर आती है—वही लुनाई में डूबा, तराशा हुआ चेहरा। बड़ी-बड़ी पानीदार आँखें। सुडौल पतली नाक। गुलाब की पंखुड़ियों जैसे ओंठ। माथे के बायीं ओर हल्की-सी खरोंच भी मुझे साफ दिखायी दी जाती है।

तुमने कोई आक्रोश व्यक्त नहीं किया था। तुम्हारे चेहरे पर एक बारीक-सी भी स्याह लकीर नहीं उछली थी। तुम्हारी सदा हँसती-सी आँखें उस समय भी हँस रही थीं बल्कि और अधिक मधुमति हो गयी थीं। तुमने बाहर आकर एक बार भी अपने छोटे रूमाल से ओंठ नहीं पोंछे थे। झूठ-मूठ ही पोंछ लेतीं तो जान जाता कि जो दो बताशे अभी-

अभी कहीं अपनी मिठास छोड़ आये हैं, वह कड़वाहट बन चुकी है। ऐसा कुछ भी तुमने कहाँ किया था ? फिर मैं कैसे मान लूँ कि तुम्हारी स्वीकृति नहीं थी। यदि तुम न चाहतीं तो मैं कैसे आगे बढ़ सकता था ? तुम नाक-भौं सिकोड़ सकती थीं। झिड़क सकती थीं। चीख सकती थीं। और कुछ नहीं तो वहीं इकजामिनेशन-टेबिल पर ही उठ कर बैठ जातीं। और मुझे पूरी ताकत के साथ पीछे ठेल देतीं। यह भी तुमने नहीं किया।

मैंने कोई जबर्दस्ती नहीं की थी। डाका डालने जैसा भी मैंने कुछ नहीं किया था। जब मैंने तुम्हारे सीने पर स्टेथस्कोप रखा था, तब भी मेरे मन में कोई मैल नहीं था। मेरे कहने पर तुमने बाडिस उतार दी थी। उस समय भी मैं डाक्टर ही था। जाने कैसे मेरी अँगुलियाँ तुम्हारे जिस्म के उस हिस्से से छू गयीं, जिसे किसी अन्य पुरुष को नहीं छूना चाहिए। तभी मेरे एक हाथ ने रंगमंच के पर्दे की तरह तुम्हारा आँचल हटा दिया था। पर्दा हटते ही एक लुभावना दृश्य आँखों पर आ उछला था। मेरा डाक्टर मर चुका था—मे आइ किस यू ?

तुमने बिना किसी झिझक के धीरे-से कह दिया था—यस।

यह सब क्या था ? क्या तुम मात्र परखना चाहती थीं ? इस तरह किसी पुरुष को परखना कोई गुड़ियों का खेल नहीं होता। तुमने साफ-साफ स्वीकृति प्रदान की थी। उस समय तुम कहाँ से इतना साहस बटोर लायी थीं ? क्या यह एक अछूते मन का साहस था ? या, उस समय तुम्हारे मन में भी कहीं कुछ रंग आया था ? मेरे लिए यह अब भी पहेली ही है।

मैंने तुम्हें बाँहों में समेटते ही तत्काल छोड़ भी दिया था। ए० सी० करेंट की तरह। डी० सी० करेंट की तरह चिपटा नहीं लिया था। यदि कुछ देर तुम्हें सीने से चिपटाये रखता, तो अब भी मैं किसी मीठे अहसास से जुड़ा होता। मेरे इन अधरों से जो मधु-पराग के थोड़े-से कण चिपक गये थे, वे भी अब कहाँ है ? वह छुअन भी नहीं है अब तो। मेरी आँखों

में बरबस तुम्हारा बीमार चेहरा घूम जातारीर के अंग-प्रत्यंग से परिचित तुम फिर कभी नहीं आओगी, इसकी लेशमात्र भी मुझे आशका नहा था।

तुमने हमेशा की भाँति पूछा था—कितने रुपये दूँ ?

लगा, कह दूँ कि अभी क्या-कुछ नहीं दे दिया आपने। यह सब कहने की मधुरता भी मुझमें कहाँ थी ? पाँच रुपये—इसमें दवा के दाम भी शामिल है।

तुमने फौरन अपने शान्ति-निकेतनी पर्स से पाँच रुपये निकाल कर मेज पर रख दिये थे। इसके बाद ही मैंने सदा की भाँति कहा था—अब आप एक हफ्ते बाद आइये। तब एक बार फिर आपका एलौक्ट्रो-कार्डियोग्राम करवाऊँगा।

तुम सहज भाव से बोली थीं—जी।

इसके बाद ही तुम क्लीनिक की दहलीज पर जा कर खड़ी हो गयी थीं—किसी रिक्शे की तलाश में। उस समय भी मैंने तुममें कोई परिवर्तन नहीं देखा था।

डाक्टर के पास मरीजों का आना-जाना लगा ही रहता है। मैं आज तक कभी किसी मरीज के लिए इस तरह व्यग्र नहीं रहा, जिस तरह तुम्हारे लिए पूरे सप्ताह व्यग्र रहा। उस व्यग्रता की धूमिल छाया अब भी मेरे मन पर है। आखिर सातवाँ दिन भी आया। सबेरे से ही तुम मेरे साथ हो गयी थीं—आज अलका आयेगी। जाने क्या कहे। शायद तब जहर का घूंट पी कर रह गयी हो। संभव है, कुछ भी न कहे। उस दिन भी तो उसने कुछ नहीं कहा था। दाँतों पर फोरहंस का ब्रश फेरते-फेरते मन में उठ आया था यह। रेखा जब सामने खड़ी प्याली में चाय ढाल रही थी, तब उसके ओंठों पर नजर पड़ते ही मैं सहम गया था। उसी समय मुझे तुम्हारे ओंठ याद आ गये थे। लगा था, तुम्हारे ओंठ को जूठा करने का मुझे क्या हक था। यह मैं क्या कर बैठा ? रेखा के साथ भी

अभी कहीं अपनी मिठास छोड़ आगे विवाह के बाद मैं मात्र रेखा का हूं, रेखा मात्र मेरी है। और मैंने बड़ी जल्दी चाय का प्याला खाली कर दिया था।

क्लीनिक का दरवाजा खुलते ही मेरी दृष्टि उस कुर्सी पर कुछ देर अटक कर रह गयी थी, जिस पर तुम उस दिन आ कर बैठी थीं। एक-एक करके मरीज आते जाते, मैं उन्हें निपटाता जाता। आहट मिलते ही मेरी आँखें द्वार पर जा टिकतीं। एक-एक क्षण पहाड़ हो रहा था। जैसे-जैसे घड़ी के कांटे आगे बढ़ते जाते, वैसे-वैसे मेरा मन भी भारी होता जाता। लम्बी प्रतीक्षा के बाद भी जब ट्रेन नहीं आती, तो प्लेटफार्म पर बैठे यात्री खीझ उठते हैं। इसी तरह मैं भी भीतर ही भीतर खीझ रहा था। क्लीनिक बंद होने का समय आ गया। तब भी तुम नहीं आयीं। हो सकता है कोई अड़चन आ गयी हो या घर पर ही देर हो गयी हो, यह सोच कर मैं एक घंटे और रुका रहा। अब आती हो, अब आती हो। लेकिन तुमको आना नहीं था। तुम नहीं आयीं। मैंने बड़ी झल्लाहट के साथ क्लीनिक के दरवाजे बंद किये और घर आ गया।

उस दिन जाने क्यों मैं कुछ टूटा हुआ-सा था। तुम्हारा यह न आना मेरे कलेजे में किसी तेज छुरे की तरह धंस गया था। जाने कितनी आलपिनें तुमने मेरे मन के पिन-कुशन में एक साथ खोंस दी थीं। स्वयं के प्रश्नचिन्हों से घिर गया था मैं। तुम पूछ सकती हो—किसी डाक्टर की एक अपरिचित जवान लड़की में इतनी दिलचस्पी क्यों होनी चाहिए। इस अधीरता से प्रतीक्षा करने का क्या मतलब ? तो मैं साफ बता दूं—मैं तुम्हारे लिए इसलिए बेचैन नहीं था कि मुझे तुमसे कुछ प्राप्त करना था। वह सब, जो एक नवयुवती से प्राप्त किया जाता है—राजी-खुशी। मुझे तुमसे मीठा या सलोना-सा कुछ नहीं चाहिए। मैं तो इसलिए बेचैन था कि आखिर तुम क्यों नहीं आयीं—क्यों नहीं आयीं।

मैं संगमर्मर का बना कोई ताजमहल नहीं हूँ—हाड़-मांस से बना

आदमी ही हूँ। डाक्टर होने के नाते मैं शरीर के अंग-प्रत्यंग से परिचित हूँ। उस एक क्षण का भी आपरेशन कर चुका हूँ। मेरा भी छोटा-सा परिवार है। रेखा मेरी पत्नी है, जो तुमसे किसी तरह कम सुन्दर नहीं। रंग तो तुमसे कहीं साफ है उसका। मेरी एक बच्ची भी है—सजी-सुन्दर गुड़िया की तरह। पत्नी से मुझे पूर्ण तृप्ति मिलती रही है। मैंने विवाह के बाद आज तक किसी परायी स्त्री को अपनी वासना में नहीं लपेटना चाहा। सुन्दर से सुन्दर स्त्री को देख कर भी मेरे मन में कभी विकार नहीं जागा। लेकिन उस दिन क्या हो गया था मुझे। जाने कैसा था वह एक क्षण। जिसने मुझे पके महुए की तरह डाल से टप्प से नीचे टपक जाने दिया था। यदि तुम वरज देतीं तो वह अप्रत्याशित क्षण आगे सरक जाता। तुम्हारी वर्जना के बावजूद आगे बढ़ता तो मैं निश्चित ही गुनहगार था। मैं अपने को आज भी गुनहगार नहीं मानता। इसीलिए मुझमें आत्मग्लानि नहीं है। पश्चाताप भी नहीं है। यदि तुम सामने पड़ जाओगी तो मैं तुमसे क्षमायाचना भी नहीं करूँगा। तुम्हें देखकर कतराऊँगा भी नहीं। तुम्हारे न बोलने पर भी इतना तो तुमसे कह ही दूंगा—अलकाजी, डाक्टर को पथ-भ्रष्ट नहीं होना चाहिए।

क्या उस क्षण तुम अपनी इच्छा से समर्पित नहीं हो गयी थीं ? हो सकता है, वह क्षणिक समर्पण ही रहा हो। जिस प्रकार मैं अपने-आपको अपराधी नहीं मानता, उसी तरह तुमने भी कोई अपराध नहीं किया। अपराध जान-बूझ कर किया जाता है। कभी-कभी कुछ कर चुकने के बाद का पछतावा ही गुनाह लगने लगता है। इसी को कुछ लोग पाप की संज्ञा दे देते हैं। तुम पछता कर गलती करोगी। मूल रूप से तो नारी नारी है। पुरुष-पुरुष है। मन की वर्जना ही सच्ची वर्जना है। मन की मर्यादा ही सच्ची मर्यादा है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों तक के मन लुट चुके हैं, अलकाजी।

मैं तुम पर कोई अहसान नहीं कर रहा था। इलाज डाक्टर का

पेशा है। प्राण बचाना डाक्टर का धर्म है। मैं तुम्हारा इलाज ही तो कर रहा था। तुम नहीं आयीं। तुम्हारा इलाज बन्द हो गया। कितना अखंड विश्वास ले कर तुम आयी थीं मेरे पास। तुम्हें मेरी दवा से लाभ भी हो रहा था। इलाज अधूरा रह गया। मुझे इसका ही सबसे अधिक दुख है। यही रह-रह कर सालता है मुझे। तुम आतीं तो। फिर चाहे मुझ पर बरस पड़तीं, झिड़क लेतीं, डाँट देतीं। लेकिन तुम्हें आना तो था।

तुम चुपचाप क्लीनिक में आकर इस तरह बैठ जाती थीं, जैसे कोई सुशील छात्र क्लास-रूम में आ कर एकदम शान्त बैठ जाता है। पहले दिन भी तुमने मात्र अपनी बीमारी के सम्बन्ध में नपे-तुले शब्दों में बात की थी। तुम प्रतिदिन दवा के नगद दाम दे कर जाती थीं। कभी एक पैसा भी तुमने उधार नहीं किया था। समय पर आतीं, समय पर चली जातीं। तुमने कभी प्राथमिकता भी नहीं चाही। जब तुम्हारा नम्बर आता, तभी मैं तुम्हें अटेंड करता। कभी तुम्हें एक-एक घंटे बैठे रहना पड़ा है। उस समय भी मैंने तुम्हें बोर होते नहीं देखा था। मेज पर से अखबार उठा कर अवश्य पढ़ने लगती थीं। हम दोनों में चार आँखें होने जैसा भी कभी कुछ नहीं हुआ था। फिर ऐसी क्या विवशता थी जो तुमने बिना किसी आपत्ति के मुझे अपने पर झुक आने दिया—बादल की तरह। निगोड़ा बादल दो बूंद चुआ कर ही भाग खड़ा हुआ था।

मेरे चौबीस घंटों में कोई एक क्षण तुम्हारा होता है। तुम मेरे मन के आँगन में आ खड़ी होती हो। तुम्हारे बदन पर वही सुआपंखी रंग की साड़ी होती है। उस साड़ी के छोर को ही तो मैंने तुम्हारी छाती पर से हटा दिया था। जाने क्यों मैं अब उस साड़ी के रेशे-रेशे पर शबनम पड़ी पाता हूँ। मुझे तुम्हारी आँखों के कोरों में कुछ मोती अटके दिखायी देते हैं। एक दिन तो मैं भीतर ही भीतर जैसे रो पड़ा था। ढेर सारे

तनावों से घिर गया था मैं। मुझमें कुछ घुंघवाने लगा था।....उस दिन इतवार था। मेरी बच्ची उमा यों ही मेरी गोद में आ बैठी। अपनी नन्हीं हथेलियाँ मेरे गालों पर फेरने लगी। बोली—पापा, यह दिल का दौरा क्या होता है? मेरी सहेली है न अलका—मेरे साथ पढ़ती है। स्कूल में मेरी सीट पर ही बैठती है। उसकी माँ को दिल का दौरा पड़ा था। थोड़ी देर में ही बेचारी की माँ मर गयी। कल वह माँ की याद आते ही रो पड़ी थी। मैं उमा को दिल के दौरे के बारे में क्या बताता? यों ही यहाँ-वहाँ की बातों से बहला दिया था उसे। कुछ देर के लिए जैसे बर्फ पड़ गयी थी मुझ पर—एकदम ठंडा हो गया था मैं। फिर धीरे-धीरे गलने लगा था—एक अलका की माँ दिल के दौरे में चल बसी। दूसरी अलका तो खुद हार्ट-पेशेंट है। जाने क्या हाल है उसका। अभी तक उसे तीन बार हार्ट-अटेक हो चुका था। मैंने ही पहली बार उसका एलैक्टो-कार्डियोग्राम लिया था। एंजाइना पैक्टोरिस निकला था उसे। एंजाइना पैक्टोरिस हृदय का खतरनाक रोग है। इसमें बहुत अधिक दर्द उठता है। रोगी जोर से चिल्ला पड़ता है और कभी-कभी दर्द से बेहोश भी हो जाता है। यों दिल के दौरे पड़ने के बहुत से कारण हैं। ब्लडप्रेशर रक्त-चाप मुख्य है। अलका का डब्लू० आर० रक्त की जाँच ठीक था। ब्लड-प्रेशर जरूर बढ़ा हुआ था। ब्लडप्रेशर विशेष रूप से गुर्दों की बीमारियों से बढ़ने लगता है। मानसिक चिन्ताओं से भी ब्लडप्रेशर बढ़ जाता है। अलका के गुर्दों में कोई खराबी नहीं थी—मानसिक चिन्तायें—पर मैंने तो उसे कभी चिन्तित नहीं देखा था। हो सकता है, अन्दर कोई घाव रिसता रहा हो। कहीं उस दिन लौटने पर उसे दिल का दौरा न पड़ गया हो। तभी वह मेरे पास—सचमुच तुम्हें ले कर मैं आकुल-व्याकुल हो गया था।

आज तुम मुझे कई बार याद आयीं। पूरे एक वर्ष का अन्तराल जैसे

उस एक क्षण में डूब गया था। लगा, कल ही तो तुम आयी थीं। मेरा मन क्लीनिक जाने के लिए राजी नहीं हो रहा था। मैं अपने पलंग पर लेटा, तुममें ही उलझ-सुलझ रहा था—गुमसुम। तभी रेखा मेरे सिरहाने आ बैठी। उसकी अँगुलियाँ मेरे सिर के बालों में खेलने लगीं। बोली—कुछ उदास-से दिख रहे हो। क्या बात है किस उलझन में पड़े हो? घर पर भी अपने मरीजों के बारे में सोचने लगते हो। तुम्हारा डाक्टर घर में भी तुम्हारा पिंड नहीं छोड़ता। चलो, उठो, चाय तैयार है।

हम दोनों चाय पीने बैठ गये। रेखा मेरे सामने बैठी थी। वह चाय का प्याला मेरी ओर बढ़ा कर कहने लगी—तो मेरा डाक्टर कहाँ खो गया था, अभी? सच तुम्हें देख कर लग रहा था, कोई कवि गीत की किसी पंक्ति में उलझा बैठा है। वह हँस दी थी। उसकी आँखें सचमुच गीत गा रही थीं।

रेखा, भई, तुम भी खूब हो। डाक्टर में कवि देख लिया तुमने। मैं तो कवि-अवि होने से रहा, तुम्हारी आँखों में जरूर कविता तैर रही है।

हटिये भी, जाने क्या-क्या कहने लगते हैं आप—क्या डाक्टर कवि नहीं हो सकता? सामरसेट माम को ही लीजिए—डाक्टर से कहीं बड़े साहित्यकार थे वे।

मैं तो डाक्टर हूँ। और डाक्टर ही रहना चाहता हूँ। डाक्टर बीमार हृदय का इलाज करता है। दिल के दौरे सम्भालता है। कवि हृदय के गीत गाता है। दोनों में कहीं भी तो ताल-मेल नहीं बैठता। कवि स्वभाव से ही भावुक होता है। डाक्टर के भावुक होने पर कुछ से कुछ हो सकता है। वाकई, अभी मैं अपने एक मरीज के बारे में ही सोच रहा था। दिल की बीमारी के मरीज के बारे में।

अरे हाँ, दिल की बीमारी का नाम सुनते ही मुझे अपनी सहेली याद आ गयी। मैं तुम्हें बताना भूल ही गयी थी। कल वह मुझे अचानक वैरायटी क्लाथ शाप में मिल गयी थी। मैं उसे घर पकड़ लायी थी।

शादी के बाद पहली बार भेंट हुई थी उससे। वर्षों बाद मिले थे हम। मैट्रिक में मेरे साथ पढ़ती थी। इन दिनों यहीं अपने मामा के पास रहती है। बेचारी का अभी तक विवाह नहीं हुआ। इकलौती बेटी, बे बाप की हो गयी है अब। रेखा ने भारी मन से कहा—करीब एक साल पहले उसे भयानक दिल का दौरा पड़ा था। मरते-मरते बची। तीन महीने मेडिकल कालेज में भर्ती रही।

मन में आया, पूरी वार्ता न सुन कर केवल नाम पूछ लूँ। लेकिन व्यग्रता पी चुकने के बाद ही पूछ पाया था—क्या नाम है तुम्हारी सहेली का?

अलका सेन।

किसका इलाज चल रहा है?

इन दिनों डाक्टर भंडारी उसका इलाज कर रहे हैं। इसके पहले कोई डाक्टर श्रीवास्तव उसका इलाज कर रहे थे। उनकी दवा से उसे लाभ भी था। लेकिन....

लेकिन। क्या मतलब इस लेकिन का? बार-बार डाक्टर बदलते रहना ठीक नहीं होता।

इस लेकिन में सारे डाक्टर सिमिट आते हैं। उन डाक्टरों में आप भी एक हैं। इसीलिए मैंने बीच में ही बात तोड़ दी थी।

क्या बात है? साफ-साफ बताओ न।

कह रही थी—यों डाक्टर श्रीवास्तव बड़े भले हैं। साधु पुरुष हैं। अत्यन्त विनम्र हैं। जाने कैसे एक दिन उनके मन में कुछ रेंग गया। उन्होंने एकदम वहीं इक्जामिनेशन-टेबिल पर मुझे चूम कर अपनी बाँहों में भर लिया। मैं ठगी-सी रह गयी। दूसरे ही क्षण वे मुझे छोड़ कर इस तरह बाहर निकल गये, जैसे मैं कोई विष-कन्या होऊँ। उनके वहाँ से जाते ही मेरा कुंआरा मन शरीर के बूंद-बूंद रक्त को मथने लगा था। बहुत चिन्तित हो गयी थी मैं। ऐसा लगा था, पाप में नहा गयी हूँ। उसी

दिन अचानक दिल का दौरा पड़ा था। अब अपने-आप में एक अजीब किस्म की कायरता महसूस करती हूँ। सामने जाने की हिम्मत नहीं होती। वे भी मेरे बारे में जाने क्या सोचते हों। जिस सड़क पर उनका दवाखाना है, उस सड़क से आज तक नहीं निकल सकी मैं।....यह कहते-कहते रो पड़ी थी अलका।

डाक्टर श्रीवास्तव तब डाक्टर नहीं रह गये थे। मन के किस कोने में कहाँ सर्प छिपा बैठा है, यह कोई नहीं जानता। वह किसी क्षण भी फन पटक सकता है। कुछ भी हो, डाक्टर ने अपने उसूल के खिलाफ किया था वह सब। तुमने डाक्टर श्रीवास्तव की आड़ में मुझे भी आगाह कर दिया। यह अच्छा ही हुआ।

जानते हो, इसके बाद ही मैंने अलका को तुम्हारी तस्वीर के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया था—ये मेरे वे हैं—ये भी डाक्टर हैं। हार्ट-स्पेशलिस्ट हैं। इनके बारे में मेरा कुछ भी कहना ठीक न होगा। फिर भी इतना तो कह दूँगी कि डाक्टर भंडारी से इनका कोई कम नाम नहीं है। तुम जब चाहोगी, इनके पास ले चलूँगी।

क्या बोली थी तुम्हारी अलका ?

कुछ बोली नहीं, चित्र लिखी-सी, तुम्हारी तस्वीर में आँखें गड़ाये खड़ी रही।

रेखा, डाक्टर भंडारी की बीस साल की प्रेक्टिस है। वे मेडिकल कालेज में प्रोफेसर हैं। मैं उनकी बड़ी इज्जत करता हूँ। उनका इलाज चल रहा है, यह बहुत खुशी की बात है।

इसके बाद ही मुझे लगा, क्यों न रेखा से साफ-साफ कह दूँ कि वह डाक्टर श्रीवास्तव मैं ही हूँ। अलका जान-बूझ कर मेरा नाम छिपा गयी थी। इस तरह की बातें कहीं न कहीं सच्चाई से कटी रहती हैं। मुँह से बात निकल जाने पर एकदम शून्य में विलीन नहीं हो जाती। वह नहीं चाहती कि उसे लेकर कोई डाक्टर बदनाम हो। मैं जानता हूँ कि वह

जीवन भर अपने ओंठ सिये रहेगी। इस तरह मेरे भीतर बहुत कुछ उबलता रहा। लाख चाहने पर भी मैं रेखा को वस्तुस्थिति से अवगत नहीं करा सका।

अलका जी, आपको मुझसे योग्य डाक्टर मिल गया है। अब मैं निश्चिन्त हो गया हूँ। यह और बता दूँ कि आप जो एक वर्ष से मेरी मेज के शीशे के नीचे कैद थीं, वहाँ से भी मैंने आपको मुक्त कर दिया है।

●

बहता पानी : अनबुझी प्यास

मेरी बगल में एक अधेड़ उम्र के सज्जन बैठे हैं। उनसे सट कर एक युवती बैठी है—धोती साड़ी में सजी-सँवरी। निटिंग कर रही है। पुल-ओवर की अधूरी बाँह पूरी कर लेना चाहती है। यह मैं साफ-साफ देख रहा हूँ।

अब तक उन दोनों में कोई बात नहीं हुई। हाथ निटिंग करने में व्यस्त हैं। आँखें काँच के आगे सीधी काली सड़क पर दौड़ने लगती हैं। फिर अपने आप वापस लौट कर आस-पास के अनजाने चेहरों में खो जाती हैं। मैं अब तक नहीं समझ पा रहा हूँ कि इनमें आपस में क्या रिश्ता है। ललाट में दमक रही सिन्दूर की बिन्दी से यह तो साफ जाहिर है कि वह कुंवारी नहीं। औरतें स्वभाव से ही वाचाल होती हैं किन्तु उसके मुँह से अभी तक एक भी शब्द नहीं निकला।

मुझे लगा, उसके ये कोई इस तरह गुमसुम बैठे रहना सह नहीं पा रहे हैं। सभी यात्री या तो बातों में मशगूल हैं या कुछ न कुछ पढ़ रहे

हैं। मेरे हाथ में भी एक साप्ताहिक का ताजा अंक है। उसमें मेरी एक कहानी चित्र और परिचय के साथ प्रकाशित हुई है। मैं अपनी कहानी पर तो यों ही सरसरी दृष्टि डाल रहा हूँ, मेरी आँखें जरूर बगल में जो अलगाव मूर्त हुआ बैठा हुआ है, उसे प्रारम्भ से ही पढ़ रही है।

आखिर मौन का बाँध टूटा।

सुरेखा, जम्मू तक इसी तरह प्लेन रास्ता है। जम्मू के बाद चढ़ाई शुरू हो जाती है। यही सीधी सड़क सर्पाकार हो जाती है! ड्राइवर के हाथ स्टेयरिंग के साथ निरन्तर घूमते रहते हैं। एक क्षण को भी नहीं रुकते।

हुँ! सुरेखा के मुँह से केवल एक यही शब्द जैसे बड़ी मुश्किल से निकला।

जिन्दगी भी सरल-सीधी कहाँ है? एक के बाद एक मोड़, घुमाव और फिर वृत्त। वृत्त के भीतर ही घूमता रहता है इंसान।

साफ-सपाट मैदान में खड़े रहकर भी चैन की साँस नहीं ले पाते हम। कोई न कोई उलझन हमें अपने जाल में फँसा ही लेती है। हम सुलझना चाह कर भी सुलझ नहीं पाते। जीवन के जाने कितने सुनहले दिन यों ही निकल जाते हैं। बीता वक्त फिर कब हाथ आता है?

सुरेखा सुनकर भी कुछ सुनना नहीं चाहती। उसकी अंगुलियाँ बराबर अब भी सलाइयों से खेल रही है सुआपंखी उनके ऊन के फर लगाती चली जा रही है। वह इस तरह तुनकी-सी, गुमसुम क्यों है? क्या उसके मन में ऐसी कोई गाँठ पड़ गयी है जो यत्न करने पर भी नहीं खुल पाती?

सुरेखा, इधर मैं कई दिनों से देख रहा हूँ, तुम पहले जैसी खुश दिखायी नहीं देतीं। अब तो हम कश्मीर चल रहे हैं। वहाँ सब कुछ हरा-भरा है, रंगीन। गुलाबों की घाटियाँ मन मोह लेंगी। तुम अपने

आप खुशियों से झूम उठोगी । ताजगी महसूस करने लगोगी । क्या सोच रही हो ? बोलती क्यों नहीं ?

ताजगी ! ताजगी तो उसमें अब भी है । यौवन के फूलों से लदी है वह । बासीपन की फफूद उसके मन पर अवश्य चढ़ रही है ।

सुरेखा को आखिर बोलना ही पड़ा—मेरे लिए जैसा कलकत्ता वैसा श्रीनगर । कश्मीर जाकर भी क्या होगा ? मैं तो यन्त्रवत उस सब में डूबी रहना चाहती हूँ जिसमें आपको सुख मिले । आपकी कामनायें ही मेरी कामनायें हैं । वहाँ भी आपका सुख ही मेरा सुख होगा ।

इन दिनों तुम जरा-सी बात से दुखी हो जाती हो । पहले तो मैं तुम्हें जोर से डांट देता था, तब भी तुम हँसती रहती थीं । एक शिकन तक तुम्हारे चेहरे पर नहीं आती थी । अब ऐसा क्या हो गया जो तुम मेरी अपनी होकर भी—

उनके कुछ आगे कहने के पूर्व ही सुरेखा गम्भीर होकर बोल पड़ी —दूरी समाप्त हो गयी । मैं मंजिल पर पहुँच गयी । लेकिन मंजिल मिल जाने के बाद भी ऐसा लगता है कि अभी चलना शेष है । मैं चल नहीं पाती । यही विवशता मुझे कभी-कभी कचोट उठती है ।

सुरेखा को लगा, अरे, मैं क्या कह गयी । यह विवशता मेरी अपनी है । इसका रोना आखिर किसलिए ।—वह और बुझ-सी गयी ।

तुम भी अजीब हो, सुरेखा । प्लेटफार्म की जरा-सी बात ने तुम्हें चोट पहुँचा दी । यह ठीक है कि तुम दोनों क्लास-फेलो थे । मैं तुम दोनों का प्रोफेसर था । मेरे अंडर रिसर्च करके ही तुम दोनों ने डाक्टरेट ली । अब वह लखनऊ यूनिवर्सिटी में लेक्चरर हो गया है । लेकिन उसे यह तो सोचना था कि तब की सुरेखा और अब की सुरेखा में बहुत अंतर है । अब वह सुरेखा के अलावा कुछ और भी है, जिससे उसे इस तरह बात नहीं करना चाहिए । बिना किसी संकोच-लिहाज के गड़े मुर्दे उखाड़ने लगा । मैं खड़ा-खड़ा कब तक रामायण सुनता रहता । एकदम चल पड़ा ।

मजबूर होकर तुम्हें भी मेरे पीछे-पीछे आना पड़ा । बस, इतनी-सी बात थी । जरा-सी देर हो जाने के कारण हम पहली बस नहीं पकड़ पाये । अब हम आज श्रीनगर नहीं पहुँच सकेंगे ।—इस तरह प्रोफेसर साहब ने हल्की-सी कैफियत देने की कोशिश की ।

सुरेखा ने कैफियत सुन भी ली । अनसुनी कैसे कर दे । पर उसका झटका हुआ मन अभी ठीक नहीं हुआ । सुरेखा ने आखिर मन की टीस व्यक्त कर ही दी—सचमुच अब मैं वह सुरेखा कहाँ हूँ । मुझे ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए, जो आपको पसन्द न हो । मैं सदा इसका ध्यान भी रखती हूँ । पर मेरा अपना भी तो कुछ है, जो कभी उभर कर ऊपर आ जाता है । उसे आप बर्दाश्त नहीं कर पाते । इसलिए मैंने अपने बारे में सोचना ही छोड़ दिया है । मैं तो केवल आपका मन रखने के लिए ही चल रही हूँ कश्मीर ।

प्रोफेसर साहब चुप हो गये । उन्होंने और कुछ कहना ठीक नहीं समझा । कहीं ऐसा न हो कि सुरेखा के साथ की यह सरस यात्रा नीरस हो जाय । जिस तरह रात में बसेरा करने वाले पक्षी वृक्ष के ऊपर चक्कर लगाते रहते हैं, उसी तरह वे सुरेखा के ही सम्बन्ध में जाने क्या-क्या गुन-बुन रहे थे । उनकी मनःस्थिति अच्छी तरह समझ रहा था । लीजिये, पेपर देखेंगे—यह कहकर मैंने वह साप्ताहिक उनकी ओर बढ़ा दिया ।

उन्होंने उसे ले तो लिया किन्तु कुछ बोले नहीं । वे उसके पन्ने पलटने लगे । कुछ मन के लायक मिले तो पढ़ें । एक लेख पर उनकी आँखें अटक गयीं—ताजमहल का निर्माता शाहजहाँ नहीं था । वे पढ़ने लगे ।

सुरेखा ने इसी बीच निटिंग बन्द कर दी । प्लास्टिक की डोलची से उसने तले हुए काजुओं का पैकेट निकाला । बड़ी सावधानी से खोला । और अब थोड़े-से काजू हथेली पर रखे, बड़ी नम्रता के साथ कह रही है —लीजिए, काजू खायेंगे ।

प्रोफेसर साहब ने चार-छः काजू उठा लिये और फिर अपनी आँखें

उसी लेख में गड़ा दीं। सुरेखा अपनी हथेली पर काजू रखे है—शायद और लें। इस तरह दो-तीन मिनिट तो हो गये फिर भी काजू उठाये नहीं जा रहे हैं। तब वह स्वयं बोली—और नहीं लेंगे ?

तुम भी तो लो। तुम क्यों नहीं खा रहीं ?

खा लूंगी। बिस्किट निकालूँ ?

नहीं। जम्मू में चाय के साथ लेंगे।

सुरेखा ने शेष काजू खा लिये। अब क्या करे ? मन में धीरे-से तिरने लगा—मैंने काजू खा लिये। न खाती तो क्या कोई खिलाता ? मनाता ? यों हम नित्य एक टेबिल पर खाना खाते हैं। क्या कभी इन्होंने एक कौर भी अपने हाथ से मुझे खिलाया ? एक बार झूठमूठ ही खिला देते। न सही यह, एक थाली में ही हम साथ-साथ खा लेते। मैं भी आखिर औरत हूँ। नारी मन की सहज स्वाभाविक अनुरागमयी मनुहारों के लिए क्या मेरे जीवन में कोई स्थान नहीं ? सुमन के प्रस्फुटित होने पर उससे भीनी-सी सुगन्ध भी न उठे, यह कैसे सम्भव है ? मैं अपनी देह-गंध का क्या करूँ ? किस पर बिखेरने जाऊँ ? अभी-अभी एक बड़े-से पुल पर से हमारी बस गुजरी है। उसके नीचे से एक विशाल नदी कल-कल करती बह रही थी। कैसी निर्मल जल-धारा थी उसकी।—मैं भी तो एक नदी ही हूँ—भरी-पूरी नदी। मेरा मन भी होता है कि मुझमें जो यह राशि-राशि निर्मल नीर भरा है, उससे कोई अपनी प्यास बुझाये। योंही दूर से देखता न रहे—।

वह इस तरह विचारों के सागर में गोते लगा रही थी, तभी प्रोफेसर साहब ने साप्ताहिक हिन्दुस्तान उसे थमा दिया। सारे पन्ने पलट चुकने के बाद उसकी दृष्टि मेरी कहानी पर रुकी। कहानी का शीर्षक पढ़ चुकने के बाद उसने लेखक का नाम पढ़ा होगा ! लेखक के चित्र और परिचय पर भी उसकी नजर गयी होगी। क्योंकि इसके तुरन्त बाद ही उसने गर्दन मोड़ कर मेरी ओर देखा—शायद यह जानने के लिए कि

क्या सचमुच मेरी सूरत उस छाया-चित्र से मिलती है। उसके ओठों पर हल्की-सी मुसकान आ गयी। यह सब जान-पहिचान पल भर में यों ही हो गयी।

मेरा चेहरा पढ़ चुकने के बाद अब मेरी कहानी पढ़ रही हैं। जैसे-जैसे कहानी पढ़ती जाती है; वैसे-वैसे उसके चेहरे का रंग बदलता जा रहा है। पूरी कहानी पढ़ चुकने के बाद वह गम्भीर हो गयी। इसके बाद वह फिर वही कहानी पढ़ रही है, यह देख मुझे कुछ अजीब-सा लगा। साथ ही एक सुखद अनुभूति भी हुई—मेरी कहानी की मीता सुरेखा से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। संभवतः इसीलिए वह उसे दुबारा पढ़ रही है कि देखें, दोनों में कहाँ कितना साम्य है। कहानी इस तरह जब जिन्दगी से लिपटने लगती है, तो लेखक को बड़ी खुशी होती है।

दुबारा कहानी पढ़ चुकने के बाद उसने प्रोफेसर साहब से कहा—आपकी बाजू में जो सज्जन बैठे हैं, उनकी इसमें बड़ी सुन्दर कहानी छपी है। देखिये न, यह रही—। उसने भर नजर मुझको देखा। मेरे मन के सरोवर में एक साथ दो कमल खिल उठे। मैं भी उसे देखता रह गया।

प्रोफेसर को कुछ कौतूहल हुआ—क्या कोई लेखक भी मेरे पास बैठा है। अब जाकर वे मुझसे बोले—तो आप कहानी-लेखक हैं ?

जी।

आप क्या किसी खास थीम पर कहानी लिखते हैं ?—उनका दूसरा प्रश्न था।

जिन्दगी स्वयं एक ऐसी थीम है जिससे एक नहीं अनेक कहानियाँ अपने आप फूट पड़ती हैं। इसलिए मुझे किसी खास थीम की तलाश नहीं रहती। जीवन के किसी भी पहलू पर कहानी लिखी जा सकती है। समय के झरोखे से देखी गयी मार्मिक घटना ही वास्तव में कहानी है। मेरी कहानी पढ़ने से यह और भी स्पष्ट हो जायगा।

मैं किस्से-कहानी पढ़ना पसन्द नहीं करता। किस्से-कहानी पढ़कर

कौन समय की हत्या करे। जो सब्जेक्ट यूनिवर्सिटी में पढ़ाता हूँ, उसकी ही सारी पुस्तकें नहीं पढ़ पाता।

कौन-सा विषय पढ़ाते हैं आप ?

मैं कैलकटा यूनिवर्सिटी में हिस्ट्री का प्रोफेसर हूँ।

आप खंडहरों, शिला-लेखों, जीर्ण-शीर्ण स्तूपों तथा मंदिरों में ही कला, संस्कृति और जीवन खोजते हैं। मैं कहानी के माध्यम से मनुष्य का मनुष्य से परिचय कराता हूँ। इंसान ऊपर से जैसा दिखायी देता है, वह वास्तव में वैसा नहीं होता।

प्रोफेसर साहब हल्का-सा व्यंग भी न झेल सके। खंडित मूर्ति-से खंडित दिखाई देने लगे। वे तो कुछ न बोले, सुरेखा अवश्य पहली बार मुझसे बोली—बड़ी मार्मिक कहानी लिखी है आपने। मीता की बेबसी पर तरस आता है। आपने एक औरत की भीतरी जिन्दगी का सही आपरेशन किया है अपनी कलम से।

सुरेखाजी, आपने एकबारगी ही मुझे प्रशंसा के फूलों से लाद दिया। एक नारी ही दूसरी नारी के मन में सही तौर से झांक सकती है। मीता आपके मन को छू गयी, इसे मैं अपनी कहानी की बहुत बड़ी सफलता मानता हूँ। मीता ने सुरेखा के मन को छुआ हो या न छुआ हो, सुरेखा ने ज़रूर मेरे मन के किसी कोने को छू लिया है। मुझे सुरेखा में मीता दिखायी देने लगी।

जम्मू में बस रुकी। टूरिस्ट-सेंटर की कैन्टीन में हम चाय पीने पहुँच गये। सुरेखा ने तपाक से आर्डर दिया —तीन चाय लाओ पाट में।

यह तीन चाय क्यों ?

क्यों, क्या आप चाय नहीं पीते ?

पीता तो हूँ, पर....

आप भी खूब हैं। क्या एक चाय में मुहरें लुट जायेंगी ?

चाय आ गयी। सुरेखा खड़ी हो कर चाय बनाने लगी। वह हल्के

गुलाबी रंग का कोट पहिने थी। लगा, गुलाब अभी-अभी खिला है।

उसने पहला प्याला मुझको ही दिया। मैंने तुरन्त ओठों से लगा लिया। बड़ी देर से चाय की तलब थी।

अरे, अपने बिस्किट तो निकालो—प्रोफेसर साहब ने याद दिलायी।

अरे, मैं तो भूल ही गयी थी। वह लपक कर बिस्किट का डिब्बा उठा लायी। नमकीन बिस्किट का डिब्बा खोल कर उसने प्लेट मेरी ओर बढ़ा दी—लीजिये।

प्रोफेसर साहब को तो दीजिये।

ले लूंगा। आप लीजिये।

मैंने दो बिस्किट उठा लिये। इसके बाद उसने नमकीन काजुओं भरी हथेली मेरी ओर बढ़ायी—बड़े स्वादिष्ट हैं। लखनऊ की मशहूर दुकान के हैं।

लखनऊ का क्या कहना। वहाँ की हर चीज निराली होती है।

काजू तो काजू ही है, पर देखिये न, जरा-से नमक और घी ने उसका जायका बदल दिया।—यह कह कर वह धीरे से मुसका पड़ी।

यही सत्य जीवन पर भी सही उतरता है। नित्य जीवन की छोटी-मोटी बातों से रस और विष दोनों की सृष्टि होती है। जहाँ आपस में स्नेह-सूत्र से प्राण से प्राण जकड़े रहते हैं, वहाँ अभावों में भी सुख फूलता है। चाहे वे पति-पत्नी हों, पिता-पुत्र हों या और कोई।

आप सच कहते हैं। पर प्रत्येक व्यक्ति इतनी गहराई से कहाँ सोचता है। आज तो इंसान मशीन का पुरजा बन गया है—काम, काम, काम। महानगरों का जीवन तो एकदम यांत्रिक हो गया है। वहाँ परिवार में ही एक-दूसरे से दुख-दर्द की बातें नहीं हो पातीं।—उसके यह कह चुकने के बाद मुझे लगा कि पीड़ा ने धीरे से छू दिया है उसको।

इन सब के लिए समय भी तो चाहिए। मुझको ही लीजिए—व्यस्तता मेरे जीवन की अनिवार्यता है। अपने ढेर कामों में मैं सुरेखा को भी

समेटे रहता हूँ।—प्रोफेसर साहब ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा।

हम व्यस्तता से छुटकारा पाने के लिए ही कश्मीर जा रहे हैं। पर इनका मन तो अब भी व्यस्त ही है। हमेशा कुछ न कुछ गुनते रहते हैं, सोचते रहते हैं। अशोक के शिला-लेखों पर इंगलिश में नया शोध-ग्रन्थ लिख रहे हैं।—सुरेखा ने इन थोड़े-से शब्दों में मानो यह जता दिया कि टूटी हुई शिला पर कुछ भी तो नहीं जा सकता। कश्मीर जाकर भी क्या होगा।

जम्मू से कोई दो मील आगे बढ़े होंगे कि चक्करदार चढ़ाई आरम्भ हो गयी। अभी-अभी एक ऐसा घुमाव आया कि बस की तेज रफ्तार के कारण सुरेखा सीट पर ढुलकते-ढुलकते बची। यदि बीच में ही प्रोफेसर साहब ने उसकी बाँह न पकड़ ली होती, तो वह लुढ़क ही गयी होती।

सुरेखा, तुम यहाँ मेरी सीट पर आ जाओ। आगे तो इससे भी अधिक खतरनाक मोड़ आयेंगे। कहीं-कहीं सड़क घोड़े के नाल का आकार ले लेगी। यह कहकर उन्होंने स्वयं सुरेखा का हाथ पकड़ कर उसे मेरी बाजू में बैठा दिया। मुझे ऐसा लगा कि मीता मेरे पास आ बैठी है। अब मैं इससे जी खोल कर बातें करूँगा।

वह प्रोफेसर साहब से सट कर बैठी है—पके बालों की छाँव में जैसे यौवन ने शरण ली हो। उसके जूड़े की भीनी-भीनी सुगन्ध मुझे भी सुगन्धित करने लगी। मेरा मन उसकी श्यामल छवि यमुना में तरंगित होने लगा—कैसा लावण्य भरा मुख है। बड़े-बड़े नेत्र क्या हैं, दो काले मेघ-खण्ड हैं—आपस में कहीं टकरा न जायें। मानिक-दीप की दीप्ति बिखर-बिखर, सिमिट-सिमिट जाती है। यह सब पत्थर के देवता पर जाकर समर्पित हुआ। आखिर क्यों? किसलिए?

जब ढलान मेरी ओर होता, तब लाख न चाहने पर भी वह मुझसे सटती है। और मुझे ऐसा लगता है कि बाँयी ओर अंगूर की बेल मुझ

पर चढ़ी आ रही है। कंधे से कंधा टकराने पर ऐसा लगता कि दो किनारे मिल कर एक होना चाहते हैं।

दूर से दो पर्वतों के बीच की थोड़ी-सी हरी-भरी जमीन कैसी सुहावनी दिखायी दे रही है। दो पुरुषों के बीच बैठी यह सुरेखा बड़ी भली लग रही है। फर्क केवल इतना है कि दोनों पहाड़ों का उस जमीन पर समान अधिकार है। और जो यह नारी हम दोनों के बीच आसीन है, वह केवल एक की है—अपने स्वामी की। वे दो-दो हैं, अथवा दो मिल कर सचमुच एक प्राण हो गये हैं—यह कैसे कहा जा सकता है। बहुधा एक छानी-छप्पर के नीचे वर्षों रह-बस कर भी नर-नारी सच्चे अर्थों में एक-दूसरे के पूरक नहीं बन पाते।

सुरेखा के सामीप्य का लाभ क्यों न उठाऊँ, इसीलिए मैंने ही पूछा—आपने किस विषय में डाक्टरेट ली है?

हिस्ट्री! अशोक के शिला-लेखों पर मैंने भी शोध किया है।

डाक्टरेट लेने के बाद आप क्या कर रही हैं? क्या आप भी कहीं पढ़ाती हैं?

इनका अपना इतना वर्क रहता है कि मैं पूरी तौर से उसमें भी हाथ नहीं बटा पाती। फिर औरत चाहे जितनी बड़ी डिग्री क्यों न ले ले, उसे वह सब करना ही पड़ता है जो एक औरत को करना चाहिए। घर में इतने नौकर-चाकर हैं पर इन्हें मेरे हाथ की ही चाय पसन्द है। यही बात खाने के साथ भी है।

औसतन भारतीय नारी ऐसी ही होती हैं, जैसी आप हैं। मीता भी ऐसी ही थी। पर वह भरी-पूरी हो कर भी भीतर से रीती थी—वर्षान्त के बादलों की तरह जो भरे-भरे-से मनोरम तो लगते हैं किन्तु भीतर से छूँछे रहते हैं। आकाश में सौन्दर्य का मेला तो लगा देते हैं किन्तु बरसते कहाँ हैं?—मेरा संकेत वास्तव में सुरेखा की ओर था।

कुछ क्षणों के लिए सुरेखा मौन हो गयी, साथ ही धूमिल भी। कहाँ

से रिसते घाव पर नमक छिड़क दिया। हर व्यक्ति सहज भाव से सत्य का सामना नहीं कर पाता। कुरूप से कुरूप स्त्री भी बदसूरत कहे जाने पर चिढ़ उठती हैं। उसके अहम को ठेस पहुँचती है। कुछ देर पहले यही सुरेखा कैसी तनी-तनी-सी बैठी थी, कैसी साफ दो टूक बात कर रही थी। जैसे ही मैंने उसके यथार्थ जीवन पर ढंकी चादर हटाने की कोशिश की, तो एकदम ढीली पड़ गयी। इस ढंग से बोलने-बतियाने लगी, जैसे कहीं कुछ नहीं है—सब ठीक है। घंटों का तनाव मिनिटों में समाप्त हो गया।

सुरेखा तर्क के आवरण में स्वयं को छिपाने की चेष्टा करने लगी—मीता कोई दूधपीती बच्ची नहीं थी। उसे स्वयं विचारना था कि जिस सरोवर में वह डुबकी लगाने जा रही है, उसमें इतना जल है भी कि वह डूब कर नहा सके। वह सब कुछ जानते हुए भी कूद पड़ी। और अब वह अपनी तपन नहीं मिटा पा रही है, इसमें दोष किसका है ?

यह ठीक है कि इस तरह जाने कितने अभाव आंचल के छोर में हँसते-हँसते बाँध लिये जाते हैं। औरत बेचारी बरसाती नदी की तरह बड़ी तेजी से आगे बढ़ती है। उसे इसका भान ही नहीं रहता कि समुद्र से मिलते ही उसका जीवन खारा भी हो सकता है। ओस के मोती कितने प्यारे लगते हैं, किन्तु उनसे प्यास तो नहीं बुझ सकती। अनबुझी प्यास भीतर ही भीतर घुटन पैदा करती है, टूटन जन्मती है। और यह अभाव, घुटन और टूटन आखिर कोई कब तक झेले ?

सुरेखा यह सुनकर और टूट-सी गयी। पर वह अब भी उभरना नहीं चाहती—यदि कोई माँ नौ महीने की सुखद, आशामयी प्रतीक्षा के बाद अपनी कोख से अपंग संतान को जन्म देती है, तो क्या वह उसका गला घोंट देगी ? नहीं। उसने उसे जिस तरह अपने खून से नौ महीने तक पाला है, उसी तरह अब वह जीवन भर हर संभव उपचार से उसे स्वस्थ बनाने के लिए प्राण होम देगी।—सुरेखा ने बड़ी दृढ़ता से कहा।

प्रणय की प्यास और माँ की ममता जीवन के दो अलग छोर हैं,

दोनों को एक गाँठ में बाँधना ठीक न होगा। एक का सम्बन्ध सीधा शरीर से है और दूसरे का एकदम मन से। प्रणय के पौधे में ही मातृत्व के फूल खिलते हैं।

सुरेखा जैसे भूल ही गयी कि ये जो सांकेतिक बातें मीता को ले कर हो रही हैं, वे उस पर भी घटित होती हैं। मात्र सुरेखा से ही उनका सम्बन्ध नहीं है, प्रोफेसर साहब भी उनसे जुड़े हैं। उसका संकोच खुलना चाह कर भी खुल नहीं पा रहा था। इस बार जब एक भयानक मोड़ आया तो उसने सीट के पीछे का हिस्सा थाम कर अपना सन्तुलन कायम नहीं रखा। स्वाभाविक तौर से अपनी देह को मुझ पर झुक आने दिया। ऐसा लगा, अंगूर की जो बेल अभी एक ओर से मुझ पर चढ़ रही थी, अब वह मुझे घेर लेना चाहती है।

इस बार वह तनिक खुल कर बोली—तपते सूरज के मन में कभी यह चाह भी उपजती है कि कोई बदली उसे ढंक ले। सूरज कभी बदली स्वयं उसे अंक में समेटने आती है—अपनी इच्छा से। सूरज के चाहने से क्या होता है। उसने बात को और स्पष्ट किया—कोई विवाहित स्त्री पति से विश्वासघात करके ही किसी अन्य पनघट से प्यास बुझा सकती है। इसके साथ-साथ उसे सामाजिक बंधनों की बेड़ियाँ भी लुक-छुप कर तोड़नी होंगी। हर स्त्री यह दुस्साहस नहीं कर सकती। भारतीय संस्कारों में पली-पुसी नारी तो यह कर ही नहीं सकती।

कोई पति जब अपनी पत्नी को उसका पावना नहीं दे पाता, तब या तो वह देखा अनदेखा करता चले या साफ-साफ समझौता कर ले। आग जैसे भी बुझती है, बुझे। वह तो बुझाने से रहा। किसी की मासूम जिन्दगी को भुलावे में रखने का उसे क्या हक है ? —मैंने इस बार बिना किसी लाग-लपेट के साफ-साफ कह दिया।

मान लीजिए, ऐसा वातावरण नहीं पाता तब ?

तब सती-साध्वी बनी बैठी रहे। जैसा जो कुछ है, भोगे। टूटे।

बिखरे। बिना सोचे-समझे इस तरह ओढ़ लिये गये रिश्तों का यही फल होता है। बबूल के पेड़ से पारिजात के फूल कैसे झर सकते हैं ?

प्रोफेसर साहब ने कोई धूप में बाल सफेद नहीं किये थे। इतनी खुली बातों की भनक भी उनके कान में न पड़ी हो, यह मैं कैसे मान लूँ। यदि वे यह सोचते हों कि हमारी बातें तो मीता को लेकर ही हो रही हैं; उनसे उनका अथवा सुरेखा से कोई सरोकार नहीं, यह उनका निरा भ्रम है। मैं तो सुरेखा के भीतर की धुँधली रेखाओं पर पेंसिल फेर कर उन्हें साफ-साफ उभार रहा था। वे बीच-बीच में झपकी ले लेते थे, यह बात अलग है। उनकी झपकती आँखों का सुरेखा अधिक से अधिक लाभ उठा लेना चाहती थी। अब उसके कूल्हे से ले कर नीचे तक का पूरा पैर मेरे पैर से चिपक गया था। बीच में अनजाने ही क्यों न हो, उसकी कोमल अंगुलियाँ मेरी गर्दन के पिछले हिस्से से छू जाती थीं।

सुरेखा फिर अपने आप को बातों में उलझाने लगी—इतना पढ़ने-लिखने के बाद मीता एक खास ढाँचे में ढल चुकी थी। अब उसका मानसिक स्तर भी साधारण स्त्रियाँ जैसा कहाँ था। उसकी ज्ञान-पिपासा बड़े से बड़ा सागर पीने के लिए लालायित थी, क्या इन स्थितियों में मीता ने अपने प्रोफेसर पर समर्पित हो कर कोई भूल की थी ? काम तो मन से उपजता है। क्या यह संभव नहीं कि विवाह के पूर्व उसके मन में विकार उत्पन्न ही न हुआ हो ? विवाह के बाद उसने महसूस किया हो —अरे, यहाँ तो ज्ञान ही ज्ञान है। मात्र मानसिक भोजन से जीवन नहीं जिया जा सकता।

यह आप दावे के साथ कैसे कह सकती हैं कि मीता ने केवल अपने प्रोफेसर की विद्वता से प्रभावित हो कर ही उनका वरण किया हो ? यश के साथ-साथ उनके पास अपना शानदार बंगला है, कार है और खासा अच्छा बैंक बैलेंस भी हो सकता है। इस सब से भी तो वह प्रभावित

हो सकती है। ऐसी युवतियाँ अपने आप को सुरक्षित कर लेती हैं। विवाह की मुहर लग जाने के बाद यह कोई जरूरी नहीं कि वे केवल भीनी-भीनी सुगन्ध का ही आनन्द लेती रहें, किसी फूल को तोड़ कर अपने जूड़े में भी तो सजा सकती है।—मैंने तीखी बात कह दी थी।

तीखे यथार्थ से वह कतराने लगी। उसने बिना किसी प्रसंग के प्रोफेसर साहब की अंगुलियाँ अपनी मुट्ठी में दबा लीं। कहने लगी—हम लोगों की बातों से आप बोर हो रहे हैं शायद—इसीलिए चुप हैं। और इस बीच कई झपकियाँ ले डालीं।

नहीं, ऐसी बात नहीं है। मैं आप लोगों की बातें बड़े ध्यान से सुन रहा था। दरअसल किसी स्त्री को सही-सही समझ पाना बड़ा कठिन होता है। मीता ने मेरे दिल में भी हमदर्दी पैदा कर दी है। प्रोफेसर साहब के अप्रत्याशित उत्तर से मुझको तो हल्का-सा झटका लगा ही, सुरेखा भी कुछ सहम-सी गयी।

तभी बिना किसी सूचना के आ धमकने वाले मेहमान की भाँति आ गये तनाव को हल्का-फुल्का करने के लिये मुझे कहना पड़ा—तब तो आप को मेरी कहानी अवश्य पढ़नी चाहिये।

अब तो मैं किसी भी हालत में न पढ़ूँगा। मुझे यह नहीं मालूम कि आपने कहानी का अंत किस प्रकार किया है। कहीं ऐसा न हो, पूरी कहानी पढ़ चुकने के बाद मीता मेरी नजर से गिर जाय। यह कह वे हँस पड़े। जैसे किसी पेड़ के सूखे पत्ते एकबारगी ही जमीन पर झर पड़े हों।

प्रोफेसर साहब, यह भी तो सम्भव है कि मीता आपके हृदय को और अधिक छू ले; नीचे गिरने की अपेक्षा और ऊँची उठ जाये।

मैं जानता हूँ कि ऐसी कहानियों का सुखद अन्त नहीं होता। वे मन को पीड़ा देकर ही समाप्त होती हैं।

शाम के धुंधलके में हमारी बस कुड पहुँची । रात यहीं रुकना है । आगे रास्ता और भयानक है । बनिहाल का दर्रा रात को पार नहीं किया जा सकता ।

हम लोग सरकारी रेस्ट हाउस में ठहर गये । निपट जंगल में सड़क से लगे दस-बीस घर हैं यहाँ । इनी गिनी दो-चार दुकानों में पेट्रोमेक्स का प्रकाश सुनसान अँधेरे के कारण और भी अधिक स्वच्छ हो गया है । सड़क पर दस-बीस बिजली की बत्तियाँ भी जल रही हैं । रेस्ट हाउस के भीतर तो बिजली है ही, बाहर मैदान में तीन-चार बिजली के खम्भे हैं । इस तरह कुछ पर्वतों की गोद में अनायास ही छोटी दीपावली सज उठी थी ।

मैं सिंगल बेड वाले रूम में ठहर गया । वे लोग मेरे बाजू के डबल बेड वाले रूम में ठहरे । हम लोग हाथ-मुँह धोकर बाहर बरांडे में इजी चेयर पर जा बैठे । खानसामा चाय ले आया । उसी समय मैंने उससे कहा—खाने में क्या दोगे ?

जो भी आप चाहेंगे ।

मैं कुछ कहूँ कि इसके पहले ही सुरेखा बोली—मैंने तीन खाने का आर्डर दे दिया है ।

प्रोफेसर साहब के साथ-साथ आपने मेरे खाने-पीने का सारा इन्तजाम भी अपने ऊपर ले लिया । मैं निश्चिन्त हो गया । अब मेरा कुछ भी कहना व्यर्थ है । नारी का यही स्नेह-भाव ही तो सहज सुख देता है । मेरे ये शब्द आत्मीयता से ओत-प्रोत थे ।

सुधीर बाबू, मेरे यहाँ हमेशा आने-जाने वालो का तांता लगा रहता है । और इसे मेहमानदारी से फुर्सत नहीं मिलती । चाय का वक्त हुआ तो चाय, खाने का वक्त हुआ तो खाना । मेरे विद्यार्थी तक बिना चाय पिये नहीं जाते ।—उन्होंने अपने इस कथन से सुरेखा को जैसे भिगो दिया ।

विवाह को तो अभी पूरे दो वर्ष भी नही हुए । इसके पहले लगातार तीन वर्षों से मैं प्रोफेसर साहब को अपने हाथ की बनायी शाम की चाय पिलाती रही हूँ । न केवल ये, उस समय जो भी मौजूद होता वह मेरे हाथ की चाय पीकर जाता । मैं सीधी यूनिवर्सिटी से नित्य बँगले पर पहुँच जाया करती थी । यहाँ-वहाँ बिखरी ढेर सारी पुस्तकें और कागज-पत्र सहेज-सँभाल कर रखना भी मेरे जिम्मे था । सुरेखा अपने आप खुलने लगी ।

अच्छा-अच्छा, अब रहने दो । ज्यादा आत्म-प्रशंसा अच्छी नहीं होती ।

मैं आत्म-प्रशंसा नहीं कर रही, यह बता रही हूँ कि मैंने किस प्रकार इनके जीवन में प्रवेश किया ।—यह उसने मुझसे कहा ।

मीता आपसे एक कदम आगे थी । वह शुरू से ही उनके साथ पिक्चर जाने लगी थी ।—मैंने फिर मीता की बात छेड़ दी ।

अरे, आप फिर मीता को घसीट लाये । ऐसा लगता है, मीता काल्पनिक मीता नहीं है । वह तभी बार-बार याद आ जाती है । सुरेखा ने हल्की-सी चुटकी ली ।

मेरी कहानियाँ काल्पनिक नहीं होतीं । मेरी सभी कहानियाँ यथार्थ-परक हैं, तभी पाठकों के मन को छूती हैं । आप लोगों से अब इतनी घनिष्ठता हो गयी है कि मैं खुल कर बात कर सकता हूँ । सच तो यह है कि मैं प्रारम्भ से आपको ही अपनी मीता समझ रहा हूँ । मैंने सीधे सुरेखा से कहा ।

हर व्यक्ति अपने ढंग से सोचने के लिए स्वतंत्र है । आपको मुझमें और मीता में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता । पर मैं साफ-साफ कह देना चाहती हूँ कि मैं मीता नहीं हूँ । इतना कह चुकने के बाद वह जोर से हँस पड़ी । उसकी यह हँसी साफ जाहिर कर रही थी कि वह मीता ही है ।

सुरेखा, तुम तो मीता पर इस बुरी तरह से झल्ला उठीं, जैसे वह तुम्हारे सामने खड़ी हो । मीता ने शायद आगे ऐसा कुछ किया है, जो

तुम्हें अच्छा नहीं लगा। तभी तुम उससे अपनी तुलना किये जाने पर चिढ़ उठीं। जो कुछ मैं कहना चाहता था, वह प्रोफेसर साहब के मुँह से निकल गया।

सोने को बिना कसौटी पर कसे खोटा कह देने से कौन नहीं चिढ़ेगा। मैं अपने में तो ऐसी कोई कमजोरी नहीं पाती जो मीता में थी। सुरेखा गम्भीर हो गई।

मैंने व्यर्थ आपका मूड खराब कर दिया। आखिर कहानी कहानी है। सच और झूठ के मेल से कहानी बनती है। अब मैं उसका नाम न लूंगा। मीता एकदम झूठी मीता है। मैंने बड़ी गम्भीरता से कहा।

इसी समय खानसामा ने सूचना दी कि खाना लगा दिया गया है। हम लोग खाना खाने चले गये। सुरेखा मेरे सामने की कुर्सी पर बैठी है। उसके चेहरे पर रत्ती भर भी क्रोध नहीं है। वह स्वयं मेरी प्लेट में खाना परोस रही है।

सबेरे उठने की मेरी आदत नहीं। मैं हड़बड़ा कर उस समय उठा, जब बाहर से किसी ने किवाड़ खटखटाये। मैंने दरवाजा खोला। सुरेखा द्वार पर खड़ी है—अरे, अभी आप सो ही रहे थे। चलिये, जल्दी से मुँह-हाथ धोकर तैयार हो जाइये।

आप न जगातीं तो मैं सोता ही रहता। अभी तैयार हुआ।

दो मिनिटों में तैयार हुआ। बिस्तर बाँधा। साथ-साथ चाय पी।

बस के रवाना होते ही ठंडी हवा प्राण कँपाने लगी। प्रोफेसर साहब ने हाथों में दस्ताने चढ़ा लिये। कानों में मफलर लपेट लिया। मैं चेस्टर पहिने था। उसके दोनों कालर उठा कर मैंने भी कान ढँक लिये। सुरेखा कोट पहिने थी। उसे कान ढँकने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। नये खून को ज्यादा ठंड नहीं व्यापती।

सड़क के एक ओर ऊँचे तराशे हुए पहाड़। दूसरी ओर कोई तीन-

चार सौ फीट नीचे उफनती नदी। उसका पानी चाँदी की तरह चमक रहा था। जैसे-जैसे हम ऊँचाई पर पहुँच रहे थे, वैसे-वैसे हवा और अधिक ठंडी होती जा रही थी। मेरे पैरों में मोजे नहीं थे। मैं कभी-कभी ही मोजे पहिनता हूँ! घुटनों के नीचे तक चेस्टर था। शेष हिस्सा पैजामें में ढँका था। पैरों के पंजों का ऊपरी भाग खुला था। ऐसा लगता था, सारी ठंडक वहीं सिमिटी जा रही है। सुरेखा ने अपने ऊनी कत्थई रंग के शाल से मेरे, अपने और प्रोफेसर साहब के पैर ढँक दिये।

मैंने कहा—इतना कीमती शाल बस के फर्श से रगड़ कर खराब हो जायगा।

क्या यह शरीर से अधिक कीमती है? शाल इस्तमाल करने के लिए है, देखने के लिए नहीं। जो चीज समय पर उपयोग में न आये, वह किस काम की?

कीमती चीज का सही तरीके से इस्तेमाल होना चाहिए। क्या रेशम के धागे से टाट सिया जाता है? यह शाल पैरों पर डालने के लिए नहीं, ओढ़ने के लिए है।

यह तो मैं भी जानती हूँ। जब मेरे पैरों में हवा तीर की तरह चुभ रही है, तो क्या आपको न चुभती होगी। इनकी बात अलग है। इन्होंने गरम पैन्ट पर गरम मोजे पहिन रखे हैं।

मैं तो बारहों महीने गरम मोजे ही इस्तेमाल में लाता हूँ। मेरे तलुवे हमेशा ठंडे रहते है। कभी-कभी एक पैर में साइटिका का पेन भी उठ बैठता है।—प्रोफेसर ने मानो यह साफ जता दिया कि अब उनके झरने के दिन हैं, फलने-फूलने के नहीं।

उमर के साथ-साथ शरीर टूटता जाता हैं। खून का बहाव मद्धिम होता जाता है। ब्रेन वर्क करने वालों का चलना-फिरना बहुत कम ही हो पाता है। इसका सेहत पर अच्छा असर नहीं होता।—मैंने बात में बात जोड़ दी।

पहले ये भी देर से सोकर उठते थे। मैंने सबेरे उठने की आदत डाल दी है इनको जबर्दस्ती मार्निंग-वाक को ले जाती हूँ।—सुरेखा ने इस ढंग से कहा जैसे वे निरे बच्चे हैं, उसकी अँगुलियों पर नाचते हैं।

आपने प्रोफेसर साहब में सबेरे जागने की आदत डाल दी। मेरी पत्नी तो मेरा रत्ती भर भी सुधार नहीं कर पायी। वही रात को जाग कर लिखना। देर से सो कर उठना। बेहिसाब चाय। सब ज्यों का त्यों चल रहा है। मैंने अपनी असलियत का थोड़ा-सा परिचय दिया।

जाने कैसी हैं आपकी मिसेज। उनकी जगह मैं होती तो दो दिन में ठीक कर देती। यह कह कर वह खिलखिला पड़ी। उसकी इस खिल-खिलाहट में जाने क्या छिपा था।

आपकी वाइफ ने किसी यूनिवर्सिटी से डाक्टरेट नहीं ली, इसीलिए वे आप को अपनी अँगुलियों पर नहीं नचा पातीं। प्रोफेसर साहब ने सुरेखा के विनोद को दुहरा कर दिया।

श्रीमती सुधीर होम डिपार्टमेंट की एक्सपर्ट तो हैं ही—न सही डाक्टर। मेरी दृष्टि में सच्ची गृहिणी होना ही स्त्रीकी सबसे बड़ी योग्यता है। गृह-स्वामिनी ही घर को स्वर्ग बनाती है—किसी इन्द्रलोक से उतर कर नहीं आता स्वर्ग। मैंने बहुत सम्हल कर मीठा-सा मजाक कर दिया।

तो आप स्वर्ग का सुख लूट रहे हैं घर में। आपकी सद्यस्नाता उर्वशी प्रभाती गा कर आपको जगाने पहुँचती होगी और तब आप रजाई में मुँह छुपाये खुर्राटे भरते होंगे। क्या कहना है इस स्वर्ग का।—सुरेखा अब इस प्रकार खुल कर बातें करने लगी है।

इसके बाद ही उसने शाल में ढंका अपना हाथ मेरे घुटने पर रख दिया। वह कुछ देर तक ज्यों का त्यों रखा रहा। मैंने ठंड से बचने के लिए अपने दोनों हाथ भी घुटनों के बीच शाल के नीचे छिपा रखे थे। घुटने पर से हटा कर अब उसने अपना हाथ मेरे हाथ पर रख दिया है,

और उसी तरह अपनी मुट्ठी में ले लिया है जैसा कल प्रोफेसर साहब का हाथ का पंजा अपनी मुट्ठी में यों ही बाँध लिया। मैंने जब कल सुरेखा की तुलना मीता से करनी चाही थी, तो यह झल्ला उठी थी। क्या यह मीता के ही रास्ते पर नहीं बढ़ रही है? हो सकता है, यह इसका प्रथम प्रयास हो। अभी साहस समेट रही हो या मात्र मुझे परख रही हो। मैंने अपना हाथ निर्जीव-सा कर दिया, उसे पूरी छूट दे दी जो मन आये सो करो।

सुरेखा अब भी हाथ में हाथ लिये है। प्रोफेसर साहब चुप हैं। वह भी चुप है। मैं जान-बूझ कर चुप हूँ। इस मौन में उसकी साँसों के स्वर बह रहे हैं जो वीणा के मधुर स्वर को मात कर रहे हैं। मधुरता माद-कता में बदलती जा रही है। पर इस मादकता को पीने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। बिना अधिकार के कुछ भी पाना न पाने जैसा ही है। उसके लिए कहीं कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। झुकना डाली का सहज धर्म है। लता के लिपटने में ही उसकी सार्थकता है। मुँह तक भरी गागर बिना छलके कैसे रह सकती है। पर यह झुकना, लिपटना और छलकना अमर्यादित हो कर घिनौना बन जाता है। सुरेखा मर्यादा तोड़ कर आगे बढ़ रही है। और उसकी मजबूरी ही यह सब करवा रही है। वह दूसरा विवाह क्यों नहीं कर लेतीं? उसने स्वयं काँटों में अपना रेशमी अंचल उलझाया है। अब तो महासती बनी पति की बाँह पर सिर रखे, चुपचाप पड़ी-पड़ी सपने देखा करे या फिर....। यौवन को जोगिया वस्त्र पहिनाने से भी क्या होगा? सन्यासिनी बन जाना कोई आसान नहीं। जोग और भोग दोनों एक साथ नहीं सध सकते।

मैंने देखा, यह छोटी-सी चिनगी भयानक आग का रूप ले सकती है। और आगकी लपटें बड़ी तेजी से बढ़ती ही जाती हैं। सब कुछ राख करके ही शान्त होती है। मैंने सहज भाव से अपने दोनों हाथ बाहर निकाल लिये। खिड़की पर हाथ टिका कर बाहर यों ही झाँकने लगा—

कितना तेज बहाव है इस नदी का । अपनी तेज जल-धारा में देवदार के कितने तख्तों को एक साथ बहाये ले जा रही है । उनमें से कुछ पत्थरों के बीच अटक गये हैं । न जाने इस तरह कब तक अटके रहें । यह कह कर मैं फिर अपनी सीट पर यथावत बैठ गया । पर मुझे लगा, मैं स्वयं भी देवदार के तख्ते को तरह कहीं अटक गया हूँ ।

पहाड़ी नदियाँ स्वभाव से ही तेज होती हैं । फिर हिमालय के अंचल की नदियों की क्या बात । कभी सूखतीं नहीं । गर्मी में भी उनमें भरपूर पानी बना रहता है । हिम-शिखरों का बर्फ गल-गल आता है इनमें । सुरेखा बोली । साथ ही उसने यह भी महसूस किया कि उसका हिमालय तो कभी गलता ही नहीं ।

इस बीच सुरेखा अपना एक हाथ बाहर निकाल कर यों ही अपना मुँह पोंछने लगी । उसका दूसरा हाथ अब भी मेरे घुटने पर रखा है । मुझे सुरेखा की नदी वाली बात कुरेदने लगी — सचमुच यह उफनती नदी ही तो है, अपार जीवनमयी । इसे और जल की दरकार कहाँ ? यह तो चाहती है कि कोई इसे उलीचे । कोई इसमें डूबे । इसके उफान को कम करे ।

मैंने अपना एक पैर उठा कर दूसरे पैर पर रख लिया । उसे अपना हाथ हटाना ही पड़ा । मेरा यह रुख उसे अच्छा नहीं लगा । उसने दोनों हाथ कोट की जेब में डाल लिये । कुछ बोली नहीं । मैं अलबत्ता बोल पड़ा—क्या आज आप निटिंग नहीं करेंगी ?

ठंड से योंही हाथ ठिठुर रहे हैं—क्या निटिंग करूँ । उसके एक-एक शब्द में हल्की-सी खीझ थी ।

क्या आपको भी ठंड लगती है—मैंने जान-बूझ कर यह बेतुका प्रश्न पूछा ।

मैं भी हाड़-मांस की हूँ, पत्थर की नहीं । अब खीझ और स्पष्ट हो गयी ।

लेकिन हम तीनों में, आपको ही सबसे कम ठंड महसूस होनी चाहिए : भला, यह क्यों ?

इसलिए कि आप हम तीनों में सबसे छोटी हैं ।

वाह, यह खूब कहा आपने । मैं कोई बच्ची नहीं हूँ । बच्चों को जरूर इतनी तेजी से ठंड नहीं व्यापती । यह कह कर उसने मुझे इस तरह देखा जैसे उसने जानना चाहा कि मुझमें कुछ बदलाहट तो नहीं हो गयी ।

आप बच्ची न सही, पर बच्चों-सी भोली जरूर है । स्त्रियाँ स्वभाव से ही सरल होती हैं किन्तु आप जरूरत से ज्यादा सरल है ।

कल हमसे किसी ने कहा था कि किसी स्त्री को समझना बड़ा कठिन है । आपने इतनी जल्दी मुझे सरलता का सर्टिफिकेट कैसे दे दिया—केवल दो दिन के संग-साथ में ।—वह हँस दी ।

सरलता स्वयं इतनी भोली होती है कि वह लाख छिपाने पर भी नहीं छिप पाती बच्चों की किलकारी की भाँति फूट-फूट पड़ती है । सरलता का अपना अलग सौन्दर्य होता है । मैंने यह जताया कि वह सरल तो है ही, सुन्दर भी है ।

सुधीरजी, आपने मेरे मन की बात को अपने शब्द दे दिये । सचमुच सुरेखा जरूरत से ज्यादा सरल है । एक बार इसकी एक सहेली अपनी झूठ-मूठ की परेशानी बतला कर पाँच सौ रुपये ठग कर ले गयी । सो आज तक वापिस नहीं मिले । यूनिवर्सिटी के छात्र तो अपनी मीठी-मीठी बातों से इसे आये दिन ठगते ही रहते हैं । किसी को पाँच रुपये से कम देना तो यह जानती ही नहीं ।—प्रोफेसर साहब ने स्नेह-सिक्त स्वर में सुरेखा को एक नई विशेषता मुझ पर प्रकट की । उन्हें मैं यह कैसे बतलाऊँ कि यही सरलता अभी-अभी संयम तोड़ चुकी है । बादलों के आवरण में दामिनी छिपी बैठी है । कभी भी भीषण कड़कड़ाहट के साथ टूट सकती है ।

मैं अब प्रोफेसर साहब से साफ बात करने लगा था । मैंने उनके

अन्तर को टटोलने का यत्न किया—आप बुरा न मानें तो एक बात पूछूँ ?

पूछिए-पूछिए—ऐसी क्या बात है ।

आपने इस उमर में शादी क्यों की ? सुरेखाजी तो आपकी शिष्या थीं । शिष्या को आपने पत्नी कैसे बना लिया ? मैं शिष्टता की सीमा लाँघ रहा हूँ । इसके लिए शर्मिन्दा हूँ ।

मैं समझ गया । अब आप हम लोगों पर कहानी लिखेंगे । आप कहीं हमें गलत पेंट न कर दें, इसलिए मैं सच को छिपाने की चेष्टा नहीं करूँगा । सब कुछ साफ-साफ बता दूँगा । क्यों सुरेखा, इस बारे में तुम्हारी क्या राय है ?—उन्होंने सुरेखा से इसलिए पूछना जरूरी समझा कि कहीं वह फिर ऐंठ न जाय ।

अवश्य बता दीजिए । सब कुछ जान-समझ लेने पर भ्रान्ति दूर हो जाती है ।—सुरेखा ने स्वीकृति दे दी ।

मैंने सुरेखा को नहीं ब्याहा, सुरेखा ने मुझे ब्याहा है । यह मेरे दूसरे विवाह की पत्नी हैं । उतरती उमर में जाने कितनी मानताओं के बाद हमने बेटे का मुँह देखा था । अभी वह घुटनों के बल चलना सीख ही रहा था कि चार महीने बाद ही काल ने मेरी पत्नी मुझसे छीन ली । उसका दूध भरा आँचल चिता पर रख दिया गया । बेटा बिना माँ का हो गया । मातृविहीन शिशु के आँसुओं ने सुरेखा को मौन कर दिया । मेरे लगातार बरजने के बाद भी यह न मानी । खुशी-खुशी उसकी दूसरी माँ बन गयी । इस तरह सुरेखा ने सुहाग की साड़ी में ही मातृत्व ओढ़ लिया । विधि के विधान पर किसका वश है ? टाइफाइड में वह बच्चा भी जाता रहा । सुरेखा एक क्षण को भी उसके पास से नहीं हटी । महीने भर सारी रात सिरहाने बैठी टुकुर-टुकुर उसे निहारती रही । बड़े से बड़े डाक्टरों का इलाज हुआ । पूजा-पाठ, झाड़-फूंक—जिसने जो बताया, सुरेखा ने सब कुछ किया । पर अन्त में आँसू ही हाथ आये ।—यह कहते-कहते उनका गला

भर आया । सुरेखा की आँखों में भी आँसू आ गये ।

सुरेखाजी, आपका जैसा त्याग विरली स्त्री ही कर सकती है । आप सचमुच देवी हैं ।—इसके पहले मैं उसे कुछ और ही समझे बैठा था ।

त्याग से जीवन में फूल खिलते है, मुसकानें बिखरती हैं, घर बसता है । मैंने सब कुछ उजाड़ दिया और स्वयं भी उजड़ गई । मेरा त्याग त्याग नहीं था । उसमें जरूर कोई खोट थी । वह देवत्व किस काम का जो अभिशाप साबित हो ।—भावनाओं में डूब गयी थी वह, उसके मुँह से एक-एक शब्द धीरे-धीरे निकल रहा था ।

यह संसार उलझनों का बहुत बड़ा जाल है । भविष्य की गुफाओं में कहाँ कौन कालिया छिपा बैठा है, इसका रत्ती भर किसी को भान नहीं होता । उसका एहसास तो उस समय होता है, जब वह जिन्दगी पर अचानक फन पटकता है । आपके पास सब कुछ है, और कुछ भी नहीं । अमंगल की काली छाया मातृत्व को भी पी गई । माँ की लोरियाँ जब सिसकियाँ बन जाती हैं, तो सचमुच जीना दूभर हो जाता है । आप व्यस्त रहती हैं, यह बहुत अच्छा है ।—मैंने आन्तरिक सहानुभूति की बदली बरसा दी । यह भीग गयी ।

उभरती यादें मन भारी कर देती हैं । ये दोनों कुछ समय के लिए अतीत में डूब कर भारी हो गये थे । मैं कुछ बोलूँ कि सुरेखा ने मुझसे पूछा—आप श्रीनगर में कहाँ ठहरेंगे ? क्या पहले से किसी होटल में रूम रिजर्व करवा लिया है ?

किसी अच्छे होटल में ठहर जाऊँगा । दिल्ली से तबियत ऊब गयी थी, इसलिए यों ही एकाएक चला आया ।

तो हम लोगों के साथ ही ठहरिए न ।

मुझे ठहरने में कोई एतराज नहीं । बड़ी अच्छी कम्पनी रहेगी । पर आप जिस तरह मेरी हर बात का ख्याल रखने लगी हैं, उससे आपको कष्ट ही होगा । मैं नहीं चाहता, मेरे लिए आप और अधिक कष्ट

उठाएँ ।—मैंने औपचारिकता बरती ।

नहीं, ऐसी बात नहीं है । कहाँ का कष्ट-वष्ट । यह तय रहा कि हम लोग एक ही होटल में ठहरेंगे ।

प्रोफेसर साहब से तो पूछ लीजिए । कश्मीर में बहुधा लोग अलग-अलग रहना ही ज्यादा पसन्द करते हैं ।

यह भी खूब कहा आपने । आप हम लोगों के साथ ही ठहरें ।—निश्छल भाव से उन्होंने कहा ।

आप कितने दिन रुकेंगे ?

एक सप्ताह श्रीनगर में रुकने का विचार है और सात-आठ दिन पहलगाँव में रहना चाहता हूँ । कहते हैं, पहलगाँव बड़ा शान्त और रमणीक स्थान है ।

और आप कितने दिनों का प्रोग्राम बना कर आये हैं ? सुरेखा की जिज्ञासा बहुत स्वाभाविक थी ।

जब तक तबियत लगेगी । जिस दिन तबियत ऊबने लगेगी, उसी चल दूँगा ।

अरे, सुधीर साहब, कश्मीर को पृथ्वी का स्वर्ग कहा है कवियों ने । वहाँ तबियत ऊबने का प्रश्न ही कहाँ उठेगा । अपने मन की बात ही जैसे घुमा-फिरा कर कह दी—देखती हूँ, कैसे ऊबते हैं आप ।

हम लोग श्रीनगर के बाजार से लगे सरकारी होटल में ठहर गये । कोई दिक्कत नहीं हुई ।

शाम को चाय पीकर यों ही बाजार जा निकले । हर दुकान के साइन-बोर्ड पर हमारी आँखें कुछ क्षणों को ठहर जातीं । ऐसी सजी-धजी थीं वे, सभी कुछ था वहाँ । अचानक सुरेखा बोली—कश्मीर इम्पोरियम को तो देखें, क्या-क्या है यहाँ ।

चलिए ।—मैंने कहा ।

अभी से ललचने लगीं—तुम मानोगी नहीं । कुछ न कुछ खरीद कर ही रहोगी ।—ये शब्द प्रोफेसर साहब के थे ।

हमने दुकान में प्रवेश किया । सुरेखा ने चारों ओर इस तरह नजर फेंकी जैसे कोई नन्हा बालक खिलौनों के बाजार में पहुँच गया हो ।

अब हम हर चीज के सामने जाकर उसे बड़े गौर से देखने लगे जैसे कोई कला-प्रदर्शनी देख रहे हों ।

यह पीले गुलाब के रंग का शाल तो दिखाइये ।—सुरेखा ने सामने टँगे शाल की ओर अँगुली उठा दी ।

मैंने कोई झूठ नहीं कहा था....—बस, इतना कह कर प्रोफेसर साहब चुप हो गये । सुरेखा को देख कर मुसकाने लगे । उन्हें पूर्व-पत्नी की याद आ ही गयी—उसने भी इसी दुकान पर यही किया था ।

दुकानदार ने उसे उतार कर तो काउंटर पर फैला ही दिया । और भी बहुत से शाल खोल-खोल कर दिखाने लगा ।

सुरेखा ने एक मैरून कलर का शाल छाँटा । उस पर सफेद रेशम का बहुत बारीक काम था । इसके बाद हल्के धानी रंग का शाल भी उसने पसन्द किया ।

इनमें आपको कौन सा अच्छा लगता है ? प्रोफेसर का हाथ पकड़कर उन्हे थोड़ा नजदीक खींचते हुए सुरेखा ने बड़ी ललक के साथ कहा ।

तुम तो जानती हो, सदा से तुम्हारी पसन्द ही मेरी पसन्द रही है । जो तुम्हें सबसे ज्यादा भाये, खरीद लो ।—बिलकुल यही शब्द उन्होंने उस समय भी कहे थे ।

ये हमेशा यही करते हैं । कभी मेरे साथ मार्केटिंग को चले भी गये तो इनकी अपनी कोई पसन्द नहीं होती । सब कुछ मुझ पर छोड़ देते हैं । वह यह मुझे सुना कर कह रही थी ।

बताइये न, इन तीनों में आपको कौन-सा पसन्द है ? जैसे वह हठ करने लगी ।

शाल तुम्हें ओढ़ना है । पसन्द कर लो । उन्होंने संक्षेप में सार की

बात कह दी ।

मुझे सुरेखा के चेहरे की हल्की-सी मायूसी साफ दिखायी दे गयी । हर स्त्री चाहती है कि कभी वह किसी की पसंदगी के कपड़े भी पहिने । अपनी पसंदगी के कपड़े तो सदा पहिनती ही है । नारी की इस सहज मनुहार से प्रोफेसर का क्या वास्ता ? अच्छे से अच्छा पहिनो । अच्छे से अच्छा खाओ । काम में जुटी रहो । यह क्या कम सुख है ?

अच्छा सुधीर जी, अब आप बताइये । इन तीनों में आप जिसे पसन्द करेंगे, मैं वही शाल खरीदूँगी ।—मुझे तृष्णा भरी आँखों से निहारने लगी ।

आपने मुझे बड़े धर्म-संकट में डाल दिया । बहुधा स्त्रियाँ अपने पति की पसंदगी के कपड़े पहिनना ही पसन्द करती हैं । सो प्रोफेसर साहब इस मामले में एकदम तटस्थ हैं । आप को जो सबसे अधिक प्यारा लगता हो, ले लीजिए ।—इसके बावजूद भी मैं जानता था कि वह मेरी पसंदगी का ही शाल खरीदेगी ।

एक का रंग बहुत प्यारा है, दूसरे की कारीगरी देखते नहीं बनती और तीसरे का कपड़ा बहुत नफीस है इसीलिए आप लोगों से पूछ रही हूँ ।—सुरेखा मेरा मन जानने के लिए ही बाल की खाल निकाल रही है ।

आपने कुछ ही क्षणों में प्रत्येक की विशेषता परख ली । मेरी दृष्टि में तीनों एक-से ही सुन्दर हैं । स्त्रियों की दृष्टि बड़ी बारीक होती है । तह में उतरना उनकी आदत में शुमार है ।

प्रोफेसर साहब तभी तनिक हट कर कश्मीर की छड़ियाँ देखने लगे । पत्नी की याद से कुछ भारी भी हो गये थे । उन्होंने शायद सोचा—कौन व्यर्थ सिर पचाये । दोनों निपटो-सुलझो । उनमें अब वह सब कहाँ है, जो देखे कि सुरेखा की गठीली देह पर कौन-सा शाल सबसे अधिक फबेगा ।

बताइये न, कौन-सा खरीदूँ ?

मानेगी नहीं । इस तरह मेरे और अधिक नजदीक आना चाहती है । इसकी कौन-सी इच्छा पूरी हुई है ? इसका जीवन ही अधूरा है । क्यों न मन रख दूँ ?

मुझे तो यह मैरून कलर पसन्द है । और आपको ?

वह खिल उठी—मेरी और आपकी बिलकुल एक-सी च्वाइस है ।

कह नहीं सकता, इसमें सचाई कितनी है ।

इसे बाँध दो । कितने का है ?

एक सौ पचास रुपये का ।

देखिये न, मेरा मन तो इस पर रीझा ही था, सुधीर जी को भी यही पसन्द आया ।—उसने पर्स से रुपये निकाल कर दे दिये । दुकानदार ने कश्मीर इम्पोरियम के छपे लिफाफे में शाल बन्द करके रख दिया । इसके बाद बोला—कोई कश्मीरी ऊनी साड़ी दिखलाऊँ । एक से एक बढ़िया साड़ियाँ हैं ।

गरम साड़ी का क्या होगा ? कौन हमेशा कश्मीर में ही रहना है ।

क्या आपके यहाँ ठंडी नहीं होती ?

कलकत्ते में कहाँ की ठंड...।

इसी समय मेरे मन की बात ऊपर आ गयी—सुरेखा जी, अब आप मेरी पत्नी के लिए कोई अच्छा-सा शाल पसंद कीजिए ।

अब आपने मुझे धर्म-संकट में डाला । फर्ज कीजिए, यह कैसे कहा जा सकता है कि जिसे मैं पसंद करूँगी, वह आपकी मिसेज को भी पसन्द आ जायगा । पसन्द न आया तब ?

इसकी रत्ती भर भी संभावना नहीं । स्त्रियाँ अपनी अलग दृष्टि से चीजें पसन्द करती हैं । फिर यह कोई जरूरी नहीं कि जो चीज पसन्द न हो, उसे यों ही फेंक दिया जाय । नजर से उतर जाने के बाद भी कितनी ही चीजें घर में पड़ी रहती हैं । और कभी न कभी उनका उपयोग भी होता है ।यदि लौटाने की बारी आ ही गयी, तो क्या शाल लौटाने श्रीनगर आऊँगा ? सीधा आपके पास भेज दूँगा ।

कितनी कीमत का शाल छाँटूं ?

आप पसन्द तो कीजिए । कश्मीरी शाल बार-बार तो खरीदा नहीं जायगा ।

क्यों, जैसा शाल अभी लिया है, वैसा ही और कोई दूसरा भी है ? हो तो दिखाओ ।

बिलकुल एक जैसे शाल बड़ी मुश्किल से मिलते हैं । हर कारीगर का अपना अलग हुनर होता है । मेरे पास पचास रुपये से लेकर हजार रुपये तक के शाल हैं । आप देखिए तो सही ।—दुकानदार ने सुरेखा के सामने शालों का ढेर लगा दिया । वह थोड़ी देर में एक-एक को देख गयी । उसने उनमें से उसी एक को छाँटा जिसे सबसे पहले पसन्द किया था—पीले गुलाब के रंग का शाल ।—क्या कीमत है इसकी ?

सिर्फ एक सौ बीस रुपये ।

ठीक है, बाँध दो । बहुत देर हो रही थी, इसलिए मैंने वहीं बात खत्म करके तुरन्त कीमत चुका दी ।

और शाल ले कर हम चहल-कदमी करते होटल आ गये ।

मैं रात में देर से खाने का आदी हूँ, पर मैंने कुछ कहा नहीं । चुपचाप खाने की टेबिल पर जा बैठा । सुरेखा मेरे सामने ही बैठी है । उसकी आँखें कुछ बोलना चाह कर भी बोल नहीं पा रही । हैं कैसे बोलें ? लाज के डोरों में बँधी है ।

आपने नया शाल ओढ़ भी लिया ? ओढ़े जाने पर वह और भी सुन्दर लग रहा है । मैंने परोक्ष रूप से कहना चाहा—आप इस शाल में और भी लुभावनी बन गयी हैं । इस सलोनेपन का आखिर होगा क्या ? क्या आप समझती हैं, बहते पानी से प्यास बुझ जायगी ? बहते पानी को बाँध कर भी तो नहीं रखा जा सकता ।

स्त्रियों के पास कोरा कपड़ा रह ही नहीं पाता । अभी आया, अभी पहिना । कीमती से कीमती साड़ी भी वह उसी दिन पहिन लेती है ।

इसके आगे यह और कह दीजिए—फिर पूछती है कैसी लगती हूँ । सुरेखा ने अपने प्रोफेसर पति को हल्की-सी थपकी लगा ही दी । वे तो इस तरह के हल्के-फुल्के प्रश्नों का उत्तर देने से रहे । रस की बात में उन्हें कहाँ रस मिलता है ? रिसर्च के किसी नये टापिक पर ही उनका दिमाग़ चलता है । हर क्षण अतीत में रहते हैं । वर्तमान से उनका केवल इतना ही नाता है—बँगले से यूनिवर्सिटी । यूनिवर्सिटी से बँगले । पढ़ना-लिखना । खाना-पीना और सोना । बस । इसलिए वह मुझसे पूछ रही है—अब आप बताइये मैं कैसी दिखती हूँ । मुझे जो कहना था, पहले ही कह चुका । इससे और अधिक साफ कहने की स्थिति में नहीं हूँ मैं ।

सुरेखा के विनोद ने हम दोनों को हँसा ही दिया । वह खुद भी हँस पड़ी । वह इस तरह हँसने-मुसकाने के क्षण खोजती ही रहती है । पर कहाँ जुट पाते हैं वे ? किसे गुदगुदाये ? किसे हँसाये ? स्वयं अकेली तो हँसने से रही । हाँ, वर्तमान पर अवश्य व्यंग की हँसी हँस सकती है । सूखे हुए झाड़ की जड़ों में पानी डालने से होगा भी क्या ?

हर औरत में यह कमजोरी होती है । सज-संवर कर वह आइने के सामने क्यों जाती है ? इसीलिए न कि सबसे पहले उसका प्रतिबिम्ब उससे कहे—बहुत अच्छी लगती हो । खुद अपने पर रीझ मत जाना । यह सुन कर प्रोफेसर साहब उछल पड़े । उन्होंने अपने ढंग से अर्थ लगाया । पर वास्तव में मैंने सुरेखा के मन की बात कही थी, मेरे मुँह से वह यही सुनने को आकुल थी ।

औरत की नस-नस पहिचानते हैं आप । कहानीकार जो हैं । मानव-मन के इतने सूक्ष्म अध्ययन के बाद ही कहानी लिखी जा सकती है ।—प्रोफेसर साहब के इन शब्दों ने मेरा मजाक पी लिया ।

मन में तो आ रहा था, साफ-साफ कह दूँ—श्रीमान, अँगीठी तो सुलगा ली । अब इस दहकती आग को तापते क्यों नहीं ? खुद ताप सकने की कूवत नहीं, तो किसी और को तापने दो ।

तीखी बात सब नहीं कह पाते । उनमें से एक मैं भी हूँ । मुझमें

इतना साहस भी कहाँ है कि मैं कहूँ—आपके जीवन-आँगन में जो यह रंग-बिरंगी रसभीनी फुलवारी फूली है, उसके फूल किसी अन्य की गोद में झरने वाले हैं। आप सुरेखा को संभालते क्यों नहीं, वरजते क्यों नहीं ?

प्रत्यक्ष में तो मैं मात्र यही संकेत कर पाया—नारी मन को समझ पाना टेढ़ी खोर है। स्त्री के अनेक रूप हैं—प्रेयसी, पत्नी, माँ—ये उसके जाने-पहचाने चेहरे भी हैं जो मजबूरियों की राख में दबे रहते हैं।

सुरेखा बात के भीतर की बात भाँप गयी। वह योंही ढँकी-मुँदी बनी रहे, कहीं उधर न जाय, इसलिए उसने टापिक चेंज कर दिया—अच्छा, आप लोगों ने कुछ तय किया कि कल हम कहाँ जायेंगे—कहाँ की सैर करेंगे।

मेरा तो सब कुछ देखा हुआ है। मैं यहाँ कई बार आ चुका हूँ। आप लोग शायद पहली बार आये हैं।

ये इसके पहले भी एक बार आये थे। मैं अलबत्ता पहली बार आयी हूँ। मेरे लिये तो सभी कुछ नया है। मैं यहाँ का जर्रा-जर्रा देखना चाहूँगी। —सुरेखा में अब अपना सुख कुसमुसा उठा है—कश्मीर में भी कुछ है।

सबसे पहले यहाँ के बाग देखेंगे।—प्रोफेसर साहब ने एकदम फैसला सुना दिया।

प्रोफेसर साहब, हिस्ट्री आप पर हावी हो ही गयी। यहाँ मुगल जमाने के भी बाग हैं। इसीलिए आपने एकदम फैसला दे दिया।

सबसे सुन्दर बाग कौन-सा है ?—सुरेखा ने पूछा।

यों तो सभी सैर करने लायक हैं लेकिन मुझे शालीमार बाग सबसे अच्छा लगा। दिल्ली में राष्ट्रपति-भवन का मुगल-गार्डन हूबहू शालीमार बाग की ही नकल है।

तो सबसे पहले हम शालीमार बाग ही देखेंगे।—यह सुरेखा का निर्णय था।

मेरी हर बात से वह जाने क्यों अपने आप को जोड़ लेती है। प्रोफेसर

साहब को कुछ कहने ही नहीं देती। बेचारे मन मसोस कर रह जाते होंगे।

हम बुरी तरह बातों में मशगूल रहे। मुझे तो अब भी पता नहीं कि मैंने क्या खाया था। सच, मैं नहीं बता सकता कि कौन-सी सब्जी बनी थी। मुझे केवल सुरेखा की आँखें याद हैं। मैं उन्हीं में डूबता-उतराता रहा।

● ●

अधटूटी सांकल

टनमर्ग, गुलमर्ग, खिलनमर्ग के बाद उस दिन सोनमर्ग की बारी थी। सोनमर्ग—जैसे ऊँचे पहाड़ों की गोद में हँसता हुआ नन्हा बालक। गिने-चुने टीन-टप्परनुमा घर। शानदार सरकारी डाक-बँगला। उछलती-मचलती नदी के कछार में मिल्टिरी के बहुत सारे टेंट-तम्बू। लद्दाख के रास्ते में है वह।

जैसे ही बस रुकी, यात्री खच्चरों (पौनियों) पर टूट पड़े। यहाँ खच्चर कम मिलते हैं। मुँहमाँगा भाड़ा वसूलते हैं खच्चर वाले। मोल-तोल किया नहीं, कि खच्चर हाथ से गया। इने-गिने खच्चर और इतने सारे यात्री। बड़ी मुश्किल से हम एक खच्चर पकड़ पाये। तीन के बीच एक खच्चर। अब क्या हो? कौन सवार हो इस पर? एकमत से यह तय हुआ कि प्रोफेसर साहब खच्चर पर सवार हों, हम उनके साथ-साथ पैदल चलेंगे।

कोई डेढ़ मील की खड़ी चढ़ाई के बाद असली सोनमर्ग के दर्शन होंगे। वहाँ बर्फ़ की एक बहुत बड़ी शिला है, बर्फ का छोटा-मोटा पहाड़

ही समझिए उसे। उसका स्पर्श तो हम कर ही सकते हैं, साहस बटोर कर उस पर चल भी सकते हैं।

खच्चर तो खच्चर ही है—बड़ा बेशर्म जानवर। भारी-भरकम सवारी को फूल-सा लादे, कठिन से कठिन चढ़ाई चढ़ जाता है। चढ़ाई शुरू होते ही मैं हाँफने लगा। सुरेखा मुझसे पहले ही थक कर एक चट्टान पर बैठ गई। अब क्या करें? प्रोफेसर साहब काफी आगे बढ़ गये थे। वे सुरेखा की ओर से निश्चिन्त थे, मैं जो था।

सुरेखा के पास पहुँचा। वह रूमाल से अपना माथा पोंछ रही थी।

"बस थक गयीं तुम?....इसी तरह ठहर-ठहर कर, सुस्ताते हुए चले चलेंगे।"

"मुझे नहीं चलना बर्फ पर। वहाँ पहुँचते-पहुँचते अधमरी हो जाऊँगी। चलिये, लौट चलें।"—यह कहते हुए उसने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया। और उठ खड़ी हुई।

"प्रोफेसर साहब हमारी प्रतीक्षा में रहेंगे। कहीं यह न समझ लें कि हम जान-बूझ कर नहीं पहुँचे वहाँ।"

"जो कुछ भी समझना हो, समझते रहें। आप तो चलिये।"

उसने झटके से मुझे दो कदम आगे खींच लिया—बड़े अधिकार के साथ।

"जैसी आपकी मर्जी। चलिये।"

मैं इस तरह उसके साथ हो गया, जिस तरह गाइड के पीछे अनजान मुसाफिर।

उसने अपनी बाँह मेरी बाँह में डाल ली। मुझे फूलों की माला-सी कोमल लगी वह। वह मुझे कहाँ ले जा रही है, यह मैं भली-भाँति जानता हूँ। इतना अनजान नहीं हूँ। पर अभी तो हम डाक-बँगले ही जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में आँखें नीचे नहीं देखतीं। आजू-बाजू, सामने, देखना भी जरूरी नहीं होता। मन की आँखें कुछ और ही देखने लगती हैं।

कोई पक्की सड़क तो थी नहीं, पहाड़ी पगडंडी पर चल रहे थे हम।

सामने का ऊँचा पहाड़ आँखें फाड़-फाड़ कर हमें देख रहा था। आखिर उसका पाँव, कहीं का कहीं पड़ ही गया। यदि मैंने जोर से, पूरी ताकत के साथ, उसके फूल से बदन को सँभाल न लिया होता, तो जमीन चाटती नजर आती। मुमकिन है, दो-चार गज ढलान में लुढ़कती चली जाती। ढलान में पैर फिसलने का इसके सिवाय और क्या परिणाम हो सकता है ?

●

हम लोग डाक बँगले के लॉन पर कुर्सियाँ डाल कर बैठ गये। आस-पास और लोग भी हैं। कोई किसी की गोद में सिर रखे लेटा है। कुछ जमीन पर बैठे ताश खेल रहे हैं। कुछ एक-दूसरे की पीठ से पीठ सटाये, विपरीत दिशाओं में मुँह किये, शायद एक ही बात कर रहे हैं। इस समय सब अपने मन के राजा हैं। सुरेखा क्या करे ? मैं क्या करूँ ? मैंने एक काम तो ढूंढ़ ही लिया।

"तुम बैठो। मैं चाय का आर्डर दे कर आता हूँ।"

"मैं भी चलती हूँ।"

वह मेरे साथ हो ली।

हम चाय के साथ-साथ खाने का भी आर्डर दे आये। चाय आने में अभी देर है। अब ? उसने सामने से अपनी कुर्सी खींच कर मेरे बगल में कर ली। कोट उतार कर कुर्सी की पीठ को पहना दिया। कोट में जो छिपा था, वह साड़ी में उभरा-उभरा दिखने लगा। नहीं तो ऐसी ठंड में कोट उतार कर अलग रख देने में क्या तुक है ? अब वह मेरे पंजे पर अपना पंजा रख कर नापने लगी और बोली—"देखूं, आपके पंजे से मेरा पंजा कितना छोटा है ?"

उसने बिना काम का काम ढूंढ़ निकाला।

"कोई इंची-टेप तो साथ लिये नहीं हो, जिससे सही-सही नाप-जोख हो सके। पुरुष का पंजा स्त्री के पंजे से बड़ा होता है, यह तो सारी दुनिया जानती है। सचमुच बड़ी अजीब हो तुम।"—मैंने जबर्दस्ती अपना पंजा खींच लिया।"

अब उसने मेरा कैमरा उठा लिया। कैमरे का मुंह खोल कर बोली-"आपने पेड़-पत्थरों के जाने कितने फोटो खींचे, मेरा फोटो क्यों नहीं खींचा ? क्या मैं इतनी गयी-गुजरी हूँ ?"

"मैं अपरिचित स्त्रियों के चित्र नहीं उतारता। जिसके हाथ पड़ जाता है, वह उसी क्षण पूछता है—किसका चित्र है ? कौन झंझट मोल ले।"

"क्या मैं अब भी आपके लिए अपरिचित ही हूँ ?"

"क्यों व्यर्थ लज्जित करती हो। अभी खींच लूंगा।"

"क्या आपके कैमरे में सेल्फ एक्सपोजर का अरेंजमेंट नहीं है ?"

"है। क्यों, क्या बात है ?"

"मैं चाहती हूँ कि एक फोटो में हम दोनों साथ हों।"

"और मैं चाहूँगा कि हम तीनों हों।"

"उन्हें आने दीजिए। यह भी हो जायगा। पर एक में केवल हम दोनों हों—कोई तीसरा न हो।"

"कोई देखेगा तो क्या कहेगा ?"

"क्या कहेगा ? क्या स्त्री-पुरुष आपस में मित्र नहीं हो सकते ? यह कोई जरूरी नहीं कि वे प्रेमी-प्रेमिका या पति-पत्नी ही हों।"

मैं अच्छी तरह जानता हूँ, सुरेखा केवल मित्र बन कर ही नहीं रह जायगी।

"कहीं वह चित्र मीता के हाथों पड़ गया तो ? उसी दिन बोल-चाल बंद हो जायगा। गुस्से से गुब्बारे की तरह फूल जायगी। स्त्री के मन में संदेह धुएँ की तरह फैलता है। बाद में भले ही वह विलीन हो जाये, लेकिन कुछ देर के लिए तो आँखों को मिचमिचा ही देता है।"

"तो क्या मीता सचमुच की मीता है ?" उस दिन तो आपने स्वयं कहा था कि मीता मात्र कहानी की मीता है—झूठी मीता है। इतना डरते हैं आप उससे ! सात भाँवर की पत्नी से भी इस तरह भयभीत नहीं होते लोग।"

"सात फेरों के चक्कर में तो पड़ा नहीं अब तक—मीता ही मेरी सब

कुछ है।"

"तो क्या आपने सचमुच विवाह नहीं किया ?"

"नहीं।"

"फिर आप शुरू से ही बीच-बीच में अपनी धर्म-पत्नी को क्यों घसीटते रहे ? इस तरह भुलावे का जाल फेंकने की क्या जरूरत थी ?"

"इसलिए कि आप लोग मुझे छरी-छटाँक, बेखूँटे का न समझें। खास तौर से आपके पतिदेव।—बिन-ब्याहे मर्द को अक्सर लोग आवारा समझने लगते हैं। कई दुनियादार तो उसे लफंगा तक कह डालते हैं।"

"तो क्या वह शाल पत्नी के नाम पर मीता के लिए ही खरीदा गया है ?"

"अब भी इसमें क्या कुछ शक है ?—कश्मीर की कोई न कोई चीज उसके लिए खरीदनी ही थी। शाल पाकर खुश हो जायगी। मैं भी घाटे में नहीं रहूँगा। शाल से दुगनी कीमत की कोई न कोई चीज खरीद लायेगी मेरे लिए।"

"क्या कहने ! खूब है आपकी मीता।"

"आप पहली मुलाकात में मेरी कहानी की मीता पर झल्ला पड़ी थीं। अब असली मीता का नाम क्यों बार-बार अपनी जबान पर लाती हैं ?—उसके नाम से आपके मन में चिढ़ नहीं उठती ?"—मैंने उसे और चिढ़ाना चाहा। मैं उसकी खीझ भरी मुद्रा देखना चाहता था।

"चिढ़ने-खीझने से भी क्या होगा ? अब तो ऐसा लगता है कि मैं स्वयं मीता हूँ। मीता को आपसे अलग करने पर मैं छिटक जाऊँगी-आपके नजदीक खड़ी नहीं रह पाऊँगी।"—जैसे उसने बड़ी बेबसी से कहा।

'अभी तक तो मैं प्रोफेसर साहब की नजरों में बड़ा भलामानुस हूँ। वे तुम्हें मेरे भरोसे छोड़कर एकदम बेफिक्र हैं। जैसे पूंजी बैंक में जमा है। लुटने का कोई अंदेशा नहीं। कोई बिरला छोटा-मोटा बैंक ही फेल होता है। मैं तो उनकी दृष्टि में स्टेट बैंक हूँ, जो कभी फेल हो ही नहीं सकता। क्यों, ठीक कह रहा हूँ न ?"

"आप बिलकुल ठीक कहते हैं। मैं नहीं चाहती कि किसी की पूंजी लुटे, लेकिन उसका इस्तेमाल तो हो। पूँजी को बैंक के 'लाकर' में रखने से क्या लाभ ? बैंक ही उसका इस्तेमाल करे। और कुछ न सही, सूद तो आयेगा।"

"यह पूंजीपति को सोचना चाहिए। बैंक दस्तंदाजी नहीं कर सकता। न ही उसे करना चाहिए।"—यह कहकर मैंने यों ही हँस दिया।

"मैं बैंक फेल करके ही चैन की साँस लूँगी। देखती हूँ, बैंक कैसे फेल नहीं होता ?"

यह कह चुकने के बाद उसने बिना सबब खड़े होकर अंगड़ाई ले ली और बोली—"चाय अभी तक नहीं आयी।"

"आती होगी। बैठो। खड़ी क्यों हो गयीं ?"

"बैंक फेल करने का प्लान बनाने।"

वह जरूरत से ज्यादा शोख होती जाती थी।

"प्लान तो तुमने पहले ही तैयार कर लिया था। यह कहो कि बैंक में सेंध लगाने के लिए कमर कस कर तैयार हो, तो ठीक भी है।"

"अच्छा, अब बहुत हो गया। कैमरा ठीक-ठाक जमाइये। फोटो हो जाये।"

"यदि तुम्हें एतराज न हो तो जो इतने सारे लोग कैमरा लटकाये फिर रहे हैं, उन्हीं में से किसी को पास बुलाकर क्यों न कह दूँ—प्लीज, जरा क्लिक कर दीजिए। बड़ी आसानी से फोटो खिंच जायगा।"

"कुछ भी कीजिए—जल्दी कीजिए।"

उसने बेपरवाही से मेरा हाथ पकड़ कर खींचा। मुझे उठना पड़ा।

फोटो खिंचते ही खानसामा चाय का पाट ले आया। जैसे वह यह ठाने बैठा था कि फोटो के बाद ही चाय ले कर आयेगा।

चाय से कुछ गर्मी आयी। ठंड से योंही लुंज हो रहा था। उस पर ठंड का कोई असर नहीं था। हिरनी-सी चंचल दिखायी देती थी। डेम के फाटक खोल दिये जाने पर उसमें से एकबारगी ही जैसे भरभरा कर पानी

नीचे आ जाता है, उसी तरह उसके अंग-अंग पर पानी आ गया था। जरूरत से ज्यादा खुश थी वह।

जब खानसामा चाय का खाली पाट और चाय के पैसे लेकर जाने लगा तो सुरेखा ने उसे अपने पास बुलाया। पर्स से एक रुपया निकाल कर उसे दे दिया। बोली—"कोई कमरा खाली है? थोड़ा लेटना चाहती हूँ। बहुत थक गयी हूँ।"

"कमरे तो सब भरे हैं मेम साब!"

"अच्छा, कोई बात नहीं।"—मैंने वहीं सब कुछ खत्म कर दिया।—"एक कोशिश तो बेकार हो गयी। बैंक फेल नहीं कर पाओगी तुम।"—मेरे इस व्यंग से वह तिलमिला उठी।

"खानसामा बड़ा चालू है। हँस कर बख्शीस ले ली और कमरे के नाम पर साफ मुकर गया।"

"हर किसी को इस तरह खाली कमरे नहीं मिल जाया करते। और तुम्हें तो हमेशा एक ही कमरे में बन्द रहना है।....सभी कमरे भरे हैं। क्या तुम्हारे लिए नया कमरा तैयार करवा दें? यदि वह कोई जादू जानता होता तो यह भी कर दिखाता।"—यह कहकर जैसे मैंने उसकी खीझ पर शोले झोंक दिये।

"आपको हर वक्त मजाक ही सूझता है। किसी की बेबसी पर इस तरह व्यंग के बाण नहीं छोड़े जाते। आप मुझे ठीक से समझने की कोशिश क्यों नहीं करते? मैंने आप में कुछ देख कर ही बन्धन ढीले किये हैं। योंही अपने को आपके सामने नहीं उघार दिया।"

"जाने तुमने मुझमें क्या देख लिया। कहीं नीम को चम्पा तो नहीं समझ बैठीं! कहाँ तुम, कहाँ मैं। दिल्ली कलकत्ते का कोई मुहल्ला तो नहीं, जब मन में आया मिल लिये। फिर आखिर यह लुका-छिपी का खेल कब तक चलेगा?"

"आप तो ज्ञान-चर्चा छेड़ बैठे। क्या आप चाहते हैं कि मैं जीवन भर संयम की सूली पर चढ़ी रहूँ?"—यह कहते-कहते वह रो पड़ी।

"आप तलाक क्यों नहीं दे देतीं?"

"यही मैं नहीं कर सकती। इतना साहस नहीं है मुझमें। मकान योंही जर्जर है, नींव का पत्थर हटते ही भरभरा जायगा। ऐसा नहीं है कि मैं उन्हें प्यार नहीं करती।"

"एक ओर कुँआ, दूसरी ओर खाई—कैसे निस्तार हो। बड़ी विकट समस्या है आपकी। जो सुख भाग्य में नहीं है, उसकी चाह भी आपमें नहीं होनी चाहिए।"

"आप अब भी गलत समझ रहे हैं मुझे। मेरा अपना कोई सुख नहीं हो सकता, यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ। नारी के जीवन में उसके शरीर की भूख ही सब कुछ नहीं होती। भूख ने आपके सामने हाथ नहीं पसारे, मेरी कोख ने आपसे भीख माँगी है! मैं माँ बनना चाहती हूँ। संतान का मुँह देखते ही यह पहाड़-सी जिन्दगी फूल-सी हल्की हो जायगी।"—यह कहते-कहते फिर उसकी आँखें डबडबा आयीं।

"तब तो तुम सचमुच मीता नहीं हो। मीता मीता है, तुम तुम हो! मीता निरी छलना है, वह माँ नहीं बनना चाहती। उसे केवल सुख चाहिए—जैसे भी हो, जहाँ से भी हो। इसीलिए भीरु भी नहीं है। तभी तो उसने उस रात धीर को अपने बेड-रूम में बंद कर रखा था। जब भी उसके वे कहीं बाहर जाते, वह यही करती। धीर को जाकर जबर्दस्ती पकड़ लाती और गन्ने की तरह पेर कर उसका सारा रस निचोड़ लेती।" इस तरह मैंने मीता का असली रूप में पेश कर दिया।

"उस रात प्रोफेसर सिन्हा अचानक एक दिन पहले ही लौट आये थे। मीता जल्दी से कपड़े ठीक-ठाक कर योंही आँखें मलती दरवाजा खोलने पहुँच गयी थी। इसके पहले स्वयं धीर को आँगन तक छोड़ आयी थी, जिससे वह पीछे के दरवाजे से चुपचाप निकल जाये। दरवाजा खुलते ही उन्होंने धीर को जाते देख लिया था, फिर भी वे ऐसे बन गये थे जैसे कुछ भी नहीं देखा। लेकिन हर पुरुष तो यह बर्दाश्त नहीं कर सकता।"

सुरेखा घटना घटने के पूर्व ही उसका परिणाम विचारने लगी।

'पौरुष चुक जाने के बाद पुरुष पुरुष कहाँ रह जाता है ? यदि वह झूठा पुरुषत्व ओढ़े रखना चाहता है तब तो इसी में उसकी गति है। सूखे सरोवर में कोई मछली कब तक तड़पेगी ? अपने आप पट् से उचट कर किनारे जा लगेगी।'—यह कह चुकने के बाद, मैं सुरेखा की प्रतिक्रिया जानने को व्यग्र हो उठा।

'उस रात की घटना के बाद भी क्या मीता धीर को उसी तरह बुलाती रही ? क्या प्रोफेसर सिन्हा भी यह सब देखा अनदेखा करते रहे? चुपचाप सब कुछ सहते रहे ? यह सब कब तक चलता रहा ? कहानी पढ़ चुकने के बाद यह जिज्ञासा तो पाठक के मन में बराबर बनी ही रहती है। वह मन को बार-बार कुरेद कर भी कोई निष्कर्ष नहीं निकाल पाता। अरे हाँ, धीर तो आप स्वयं हैं। साफ-साफ बताइये न।'—सुरेखा ने सीधे मुझ से पूछा।

'और तब इसके बाद क्या हुआ ? यही प्यास कहानी की जान है। यही जिज्ञासा पाठक को अंत तक कहानी में बाँधे रहती है। जिसमें यह चुम्बकीय आकर्षण नहीं होता, वह कहानी नहीं होती, और चाहे जो हो। रही मेरे धीर होने की बात, वह भी एकदम झूठ है। न मैं कोई धीर हूँ, न मेरी कोई मीता ही है।'

यह कहकर मैं हँस पड़ा, जैसे विदूषक दूसरों को हँसाते-हँसाते स्वयं हँस पड़ा हो।

'क्या यह आप सच कह रहे हैं अथवा इसके आगे भी कोई कहानी है ? मान गयी, आप सच्चे कहानीकार हैं। कहानी के भीतर कहानी गढ़ते चले गये।'—वह इस ढंग से बोल रही थी जैसे मैं जनम-जनम से उसका हूँ और एकछत्र अधिकार है मुझ पर उसका।

'मीता की कहानी समाप्त हो गयी। अब सुरेखा की कहानी चलेगी और उसके साथ धीर नहीं सुधीर होगा।'

मैंने उसका पंजा बड़ी जोर से अपनी मुट्ठी में दबा लिया।

हम लोग अपने-आप में खोये हुए थे। प्रोफेसर साहब हमारे पीछे

आकर कब खड़े हो गये हैं, इसका हमें कोई भान नहीं था।

'मैं आप लोगों की राह ही देखता रहा। सचमुच बड़ा दुर्गम रास्ता है। बड़ी खड़ी चढ़ाई है।'—उनके इन शब्दों ने जैसे करेंट का काम किया।

सुरेखा ने अपनी कुर्सी उन्हें दे दी और स्वयं खड़ी हो गयी। मैंने अपनी चेयर उसे आफर की और मैं भी खड़ा हो गया। अभी-अभी जो अनचाहा घट चुका है, उस पर पानी फेरने की नियत से मैंने कहा—'लाइये, आप दोनों का एक स्नेप ले लूँ।'

सुरेखा उनका हाथ अपने हाथ में लेकर अधिकार पूर्वक बोली—'आइये, पास-पास खड़े हो जायें। इस तरह डाक बंगला और उसके पीछे का पहाड़ भी बैक ग्राउंड में आ जायगा। जब भी यह फोटो हमारे सामने आयेगा, हमें लगेगा कि हम सोन-मर्ग में हैं।'—उन्हें रूठने नहीं देगी वह।

वे दोनों एक दूसरे के एकदम नजदीक खड़े हो गये। मैंने फोटो ले लिया।

इसके बाद प्रोफेसर साहब बोले—'एक फोटो हम तीनों का भी तो होना चाहिए।'

'मैं भी यही कहने वाली थी। आप फोकस ठीक कर लीजिये। कोई आकर 'क्लिक' कर देगा।'

हम तीनों का भी फोटो हो गया। मुझे लगा, प्रोफेसर साहब में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, उन्होंने कुछ भी माइंड नहीं किया। अभी-अभी उन्होंने स्वयं अपने हाथों से सुरेखा की बाँहों में कोट की बाँहें डाल दी हैं। वे उसे बच्चों की तरह फुसला रहे हैं—'देखतीं नहीं, इतना दिन चढ़ जाने के बाद भी कैसी करारी सर्दी है। और तुम कोट उतारे बैठी हो !'

'आपका चेहरा भी तो उतरा हुआ है। बहुत थक गये हैं। चाय मंगाऊँ ?'—सुरेखा ने मिजाजपोशी की—'वैसे, खाने का भी आर्डर दे रखा है। लंच का टाइम भी हो रहा है।'

'चाय-वाय क्या—लंच ही लेंगे।'

'खानसामे से जाकर पूछती हूँ, कब तक दे रहा है लंच ।'

वह बड़ी तेजी से आगे बढ़ गयी ।

प्रोफेसर साहब सचमुच थके हुए थे । कुर्सी की पीठ के ऊपरी हिस्से पर उन्होंने अपनी गर्दन रख दी । आँखें बन्द कर लीं । आराम करने लगे । मेरा मन मुझे कुरेदने लगा—'कहीं बैंक फेल होने की आशंका ने तो भीतर से नहीं झकझोर दिया ? बुढ़ापे की पूँजी प्राणों से प्यारी होती है । पूँजी लुटना भी तो नहीं चाहती, केवल सूद चाहती है । जिन्दगी कैसे-कैसे रूप बदलती है । सुरेखा को ही लो । उसके एक मुख ने कितने मुखौटे लगा रखे हैं । जीवन-नाटक जाने कितने मुखौटे लगाने को विवश करता है हमें ।'

इसी समय सुरेखा ने आकर कहा—'चलिये, खाना तैयार है ।'

किसी नन्हीं बालिका की भाँति उसने प्रोफेसर साहब की कलाई पकड़ ली और बोली—'आप आज बहुत हारे-थके-से लग रहे हैं ।'

वे क्या बोलें ? थके तो शुरू से ही हैं ।

हम रात करीब आठ बजे होटल पहुँचे । सर्कस के ऊपर-नीचे चक्कर खाने वाले झूले की तरह लगातार बस में झूलते रहने से जोड़-जोड़ में दर्द था । प्रोफेसर साहब का तो कचूमर ही निकल गया था । वे होटल पहुँचते ही कटे हुए तने की तरह बिस्तर पर लुढ़क गये । उस रात हममें से किसी ने भी खाना नहीं खाया । केवल काफी पी ।

दूसरे दिन कहीं जाने की हिम्मत नहीं हुई । दिन भर आराम करते रहे । उस दिन केवल एक ही काम मैंने किया । सबेरे टहलता हुआ फोटोग्राफर को फिल्म धुलने दे आया । पाँच रुपये जमा करके बोल आया था—'शाम को आकर ले जाऊँगा या किसी को भेजूँगा ।'

सुरेखा कई बार पूछ चुकी थी—'कल के प्रिंट आये ? जाने कैसे आये हों । एक्सपोज ठीक हुए होंगे तो इनलार्जमेंट बनवायेंगे ।'

दोनों एडजाइनिंग रूम हैं । सुरेखा कभी भी आ जाती है । जब भी वह आती, मैं मन में सोचने लगता—'कहीं इसका इस तरह बार-बार

आना उन्हें नागवार न गुजरता हो । मेरे कुछ भी कहने से तुनक जायगी ।

संझा के झुटपुटे में आ कर उसने मेरे रूम की बत्ती जलायी । मैंने देखा वह कुछ घबड़ायी-सी है । उसका चेहरा फक् है । एकबारगी ही, बड़ी जल्दी में सारी घबराहट मुझ पर उड़ेल दी—सुधीर जी, गजब हो गया । होटल का चपरासी फोटो का लिफाफा उनके हाथ में पकड़ा गया । सबके सब फोटो एक-एक कर सबसे पहले उन्होंने ही देखे । हम दोनों के फोटो पर नजर पड़ते ही वे बुझ-से गये । फिर थोड़ा सँभले । कहने लगे 'कोई देखेगा तो क्या कहेगा ? इसीलिए गयी थी काश्मीर ! मुझसे छिपाने की क्या बात थी । थकने-थकाने का तो कोरा बहाना था । कल तुम लोगों ने जान-बूझ कर मुझे अवाइड् किया था । इसके पहले तुमने कभी किसी की छाँह तक दाबने की कोशिश नहीं की । यह सब तुम्हें नहीं करना चाहिए । मैं खुद को इस तरह लुटते नहीं देख सकता । मैंने ब्याह से पहले ही तुम्हें टोका था, बरजा था ।' बोलिये, अब क्या होगा ?

'मैं कल यह होटल छोड़ दूँगा ।'

'यह नहीं हो सकता ।'—यह कह, वह भयभीत बालिका-सी एकदम से भाग खड़ी हुई ।

हम तीनों में कोई भेद तो ऊपर से दिखता नहीं । साथ खाते हैं, साथ घूमने जाते हैं, साथ ठहरे हैं । लेकिन हम एक नहीं, अलग-अलग हैं, होटल के चपरासी को इसका क्या पता । मैं बाथरूम में था । तभी वह फोटो का लिफाफा बगल के रूम में दे गया । साथ-साथ फोटो खिचवाना गुनाह हो गया । सुरेखा सचमुच बड़ी सीधी है । दुनियाँ का कुछ भी तो नहीं देखा उसने । ऊँचे घराने की है । एक सम्मानित प्रोफेसर की पत्नी है । बड़े-बड़े लोगों में उठती-बैठती है । यह सब ठीक है । लेकिन उसे जिस छुवन की दरकार है, वह इस तरह तो प्राप्त नहीं हो सकती । अपने को बोल्ड बनाना होगा । छलावा ओढ़ना होगा ।....प्रोफेसर साहब को कौन समझाये कि सुरेखा कुछ भी कुत्सित, घृणित, अशोभ-

नीय करने नहीं जा रही है। वह तो अपनी सूनी गोद भरना चाहती है। आप पिता न होकर भी पिता कहलायेंगे। वंश डूबने से बच जायगा। तट के अध-उखड़े झाड़ का क्या भरोसा? काल का प्रवाह किसी भी क्षण जड़ समेत उखाड़ कर दूर फेंक देगा। इसके बाद सुरेखा का क्या होगा? क्या करेगी वह? जीने के लिए भी तो कोई आसरा चाहिए।....मैं इसी उधेड़-बुन में पड़ा करवटें ले रहा था कि तभी सुरेखा आ कर बोली—'आपको प्रोफेसर साहब बुला रहे हैं।"

"किस लिए बुला रहे हैं? मूड तो ठीक है।"

"हाँ-हाँ, कुछ भी अशोभन नहीं हो सकता।"

"तुम चलो। कपड़े बदल कर अभी आया।"

मैंने वहाँ पहुँचकर ऐसा कुछ नहीं देखा जिसके कारण मुझे होटल छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़े। मुझे देखते ही बोले—'बड़े अच्छे फोटो आये हैं, आपने अभी देखे ही कहाँ हैं? इन दो को इंलार्ज करवा दीजिए-मेरे लिए।"

मैं देखकर हैरान रह गया। इनमें तो एक वही है, जिसे लेकर अभी तूल खड़ा होने वाला था। दूसरा हम तीनों का है।

"आज ही दे देंगे। चलिये, थोड़ा टहल आयें। दिन भर आज आराम ही तो करते रहे।"

"चलिये। सुरेखा, जल्दी तैयार हो जाओ।"—जिस लहजे में रोज बोलते हैं, ठीक उसी लहजे में बोले वे। मुझे पूरा विश्वास हो गया कि कहीं कुछ गड़बड़ नहीं।

हम नित्य की भाँति बाजार चले गये। सुरेखा ने कुछ ड्राइ फ्रूट खरीदे। मैंने श्रीनगर फोटो स्टूडियो में निगेटिव इंलार्ज करने को डाल दिये।

जब रात खाने की टेबिल पर बैठे तो प्रोफेसर साहब ही सबसे पहले बोले—'सुधीर बाबू, सुरेखा पिक्चर जाना चाहती है। मैंने इधर कई वर्षों से सिनेमा देखना बंद कर दिया है। मैं आज तक इसको ले कर कभी पिक्चर देखने नहीं गया। वैसे इसे पिक्चर देखने का कोई खास शौक नहीं

है। कभी-कभार अपनी सहेलियों के साथ चली जाती है। आप इसे आज पिक्चर दिखा लाइये।

मैं सकपका गया। कहाँ टंटा खड़ा होने वाला था, कहाँ पिक्चर का प्रोग्राम बन गया। यह कैसा जादू हो गया।

"आप भी चलिये। यह ठीक है, कि आपने कई सालों से सिनेमा नहीं देखा लेकिन सिनेमा न देखने की कोई कसम तो नहीं खायी।"—मैंने उनकी थाह लेनी चाही।

"फिजूल नींद खराब होगी। नींद पूरी न होने से कल ही तबियत खराब हो जायगी। इस उम्र में फूक-फूंक कर कदम रखने पड़ते हैं। आज इसे ले जाइये।"

"सुरेखा जी, यह अचानक पिक्चर की धुन कैसे सवार हो गयी? मान लीजिये, मैं भी आपका साथ न दूँ, तब?"

"कैसे साथ न देंगे। आपको चलना ही पड़ेगा। आज शाम इन्होंने मेरा मूड खराब कर दिया था। अब इन्होंने ही पिक्चर का प्रोग्राम बना दिया। चलेंगे न?"

"हाँ-हाँ, आपका मूड जो ठीक करना है।"

पिक्चर हाउस होटल से ज्यादा दूर नहीं है। हम पैदल ही निकल पड़े। सड़क पर आते ही मेरा प्रश्न था—"सुरेखा, यह सब कैसे हो गया? कौन-सी जादू की लकड़ी फेर दी तुमने अपने पतिदेव के सिर पर?"

"आपकी कहानी ही मेरे लिए जादू की लकड़ी बन गयी। वे जब मुझ पर उबलने लगे तो मैंने उनके सामने आपकी कहानी रख दी, और बोली—पहले आप इसे ध्यान से पढ़ें, पढ़ कर विचारें, तब मुझे बतायें कि मैंने साथ फोटो खिचा कर कौन-सा पाप कर डाला? कहानी पढ़ते ही उन पर घड़ों पानी पड़ गया। देवता ठंडे पड़ गये। आगे कुछ भी बोलने की हिम्मत नहीं हुई। उल्टे मुझे मनाने लगे।"

सुरेखा अपनी विजय पर फूली नहीं समा रही थी।

'वाकई कहानी ने कमाल कर दिया। तुम प्रत्यक्ष जीवन भर जो न

कह पातीं, वह सब तुमने कहानी के माध्यम से कह दिया ।'

हमने जोगिन फिल्म देखी । हम दोनों के बीच पिक्चर हाउस में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ जैसा बहुधा ऐसे प्रसंगों में हुआ करता है । पिक्चर खत्म होने पर मैंने सुरेखा को रूमाल से आँखें पोंछते अवश्य देखा ।

इस बीच मेरे मन में एक ही बात जाने कितने रूपों में बार-बार तैरती रही—काश, यह माँ बन पाती ।

●

दूसरे दिन सुरेखा मुझे अधिकारपूर्वक स्वीमिंग-पूल पकड़ ले गयी । अब वह मुझे नन्हें बच्चे की तरह चाहे जहाँ ले जाने का जैसे अधिकार पा गयी थी । मैंने पहली बार डल झील के बीच स्वीमिंग-पूल का आनंद लिया । तैरना तो नाम-मात्र का था, साथ-साथ डल में किल्लोल करते रहे । पूरे एक घंटे तक पानी में रहे ।

लौटते ही मुझे हल्का-सा बुखार हो आया । दोपहर कुछ भी खाने की इच्छा नहीं हुई । सुरेखा मुझे लेकर चिन्तित हो गयी । मेरे लाख मना करने पर भी वह बाजार जा कर सेव का जूस ले आयी और मुझे मजबूरन पीना पड़ा ।

दिन ढलते-ढलते एक सौ चार टेम्परेचर हो गया । वह दौड़ी-दौड़ी होटल के मैनेजर के पास गयी ।

थोड़ी देर में डाक्टर आ गया । डाक्टर ने कहा—ठंड बैठ गयी है । निमोनिया के आसार हैं ।

डाक्टर दवा दे कर चले गये ।

प्रोफेसर साहब के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं । सुरेखा तो ऐसी हो गयी जैसे किसी नई सरकारी इमारत का झंडा मातम में झुका दिया गया हो । वह सिरहाने बैठी, मेरे माथे पर ठंडे पानी की एक पट्टी के बाद दूसरी पट्टी रख रही है । प्रोफेसर साहब भी वहीं पास कुर्सी पर बैठे हैं ।

मैंने उन दोनों को घबड़ाया हुआ देख कर कहा—'आप लोग घबड़ाइये नहीं । इलाज चालू हो गया है । जल्दी ठीक हो जाऊँगा ।'

'सुधीर बाबू, आप अपना पता दे दीजिए । अभी तार कर देते हैं । घर से कोई न कोई आ जायगा । आप कहें तो आपकी वाइफ को ही हम बुलवा लें ।'

'इसकी कोई जरूरत नहीं । आप लोग तो हैं । जो आप लोग कर रहे हैं, वही वे करते ।'

मैं उन्हें कैसे बताऊँ कि घर पर ऐसा कोई नहीं है जो तार पा कर दौड़ा चला आये । बूढ़ी विधवा बहिन के अलावा मेरा और है ही कौन ? रही पत्नी की बात, सो मेरी कोई पत्नी-वत्नी नहीं । यह सुरेखा भी जानती है ।

वे दोनों डाक्टर के साथ जो आये सो मेरे पास ही बैठे रह गये । खाने का समय हो गया है । पर उस ओर किसी का ध्यान नहीं है । मैंने ही उनसे कहा—'आप लोग खाना खा आइये न ।'

'जाइए, आप खा आइए । मैं बाद में खा लूंगी । हममें से किसी न किसी को तो इनके पास रहना चाहिए ।'—सुरेखा प्रोफेसर साहब से बोली ।

'चला जाऊँगा । ऐसी जल्दी क्या है ।'

'यह होटल है, घर नहीं । बाद में ठंडा खाना ही मिलेगा ।'—मैंने कहा ।

हम दोनों के जोर देने पर वे चले गये ।

सुरेखा ने कम्बल के नीचे हाथ डाल कर मेरा हाथ अपनी मुट्ठी में ले लिया और रुँआसी-सी बोली—'मैंने आपको बीमार कर दिया । न मैं आपको स्वीमिंग-पूल घसीट कर ले जाती और न आप बीमार पड़ते ।'

'मैं बीमार हो गया तो क्या हुआ, तुम्हारी एक मीठी-सी मनुहार तो पूरी हो गयी ।'—मेरे यह कहने पर उसने धीरे से मुसका दिया ।

'आज रात मैं इसी कमरे में, आपके पास ही सोऊँगी ।'—उसने इस ढंग से कहा जैसे मेरे पास हर हालत में सोना ही चाहिए ।

'ना, यह नहीं हो सकता । बगल में ही तो हो, जरूरत पड़ने पर बुला

लूँगा । मन बड़ा अस्थिर होता है । वे फिर कुछ न सोच बैठें ।'

'सोचने को तो बहुत कुछ सोचा जा सकता है । पर यह भी तो जान लूँगी कि मैं लक्ष्मण-रेखा को लाँघ कर बाहर जा सकती हूँ अथवा नहीं ।'

'काश, वे समझ पाते कि मातृत्व में ही नारी की पूर्णता है । नारी का जन्म ही माँ बनने के लिए हुआ है ।'

उसने एक लंबी साँस ली और फूट पड़ी । उसके दो गरम आँसू मेरे गाल पर चू पड़े ।

मैं भीतर ही भीतर भर उठा । झुकी हुई डाल जमीन से आ लगी । मैंने उसका सिर अपनी छाती पर रख लिया और बोला—'तुम इजाजत दो तो मैं प्रोफेसर साहब से साफ-साफ कह दूँ । सुरेखा माँ बन सकती है बशर्ते····।'

'बस, यही बकाया रह गया है । आपकी मीता ने यही नहीं कहा था प्रोफेसर सिन्हा से । उसे इसकी जरूरत भी नहीं थी । उसके मन में माँ बनने की ललक ही कहाँ थी ? वह तो गन्ध की भूखी थी, फल की नहीं । पर मैं तो····।'—वह फफक पड़ी ।

मैंने उसे और जोर से चिपटा लिया । उसका सब कुछ मुझे बर्फ की तरह ठंडा लगा । उसकी गरम साँसें सिसकियों में बदल चुकी थीं ।

'आने दो प्रोफेसर साहब को, मैं सब साफ-साफ जताये देता हूँ ।'—यह कहते हुए मैंने उसके आँसू पोंछ दिये ।

'ना, यह नहीं करेंगे आप । आप जहाँ हैं, वहीं बने रहें । ऐसा न हो कि मैं कहीं की न रहूँ ।'

'इस तरह कब तक घुटती रहोगी ?'

'आप व्यर्थ मेरी उलझनों में न उलझें । मानसिक तनाव से तबियत और खराब होगी । चुपचाप पड़े रहें ।'

यह कहकर मानो अपना सारा दुख उसने स्वयं झाड़ दिया ।

प्रोफेसर साहब खाना खा कर लौट आये । बोले—'जाओ सुरेखा तुम भी खा आओ ।'

'मुझे भूख नहीं है ।'

'जाइये-जाइये । मैं ठीक हूँ । ठीक हो जाऊँगा । क्यों चिन्ता करती हैं आप ।'

'जाओ, थोड़ा-सा तो खा लो ।'

'सचमुच मुझे भूख नहीं है ।'—और वह नहीं ही गयी । कुछ देर बाद बोली 'जाइये, आप लेटिये न । बिना किसी बीमारी के ही बीमार-से नजर आने लगे । आप बहुत जल्दी घबड़ा जाते हैं ।'

इसके बाद मुझे सुना कर कहने लगी—'हमेशा से इनका यही हाल है । मेरे जरा-सा सिर में दर्द होने पर आसमान सिर पर उठा लेते हैं । उस दिन ठीक से अपने विद्यार्थियों को पढ़ा तक नहीं पाते । हाजिरी लगा कर घर लौट आते हैं ।'

'आप हैं ही ऐसी ।····सूरजमुखी का फूल बिना सूरज के कैसे खिला रह सकता है ?'

'आप फिर बात करने लगे । डाक्टर ने कम्प्लीट रेस्ट बताया है ।'

'ये बड़े बातूनी हैं । चुप कैसे रह सकते हैं ? बात भी बड़े मजे की करते हैं ।'—प्रोफेसर साहब ने यह कह कर हम दोनों को गुदागुदा दिया ।

'जाइये न ।'—सुरेखा ने फिर कहा ।

प्रोफेसर साहब थोड़ी देर जैसे असमंजस में पड़े रह गये । बाद में धीरे से बोले—'सुधीर बाबू को नींद आ जाने दो फिर हम दोनों चलेंगे ।'

'मैं यहीं रहूँगी । इन्हें ऐसी हालत में अकेला कैसे छोड़ा जा सकता हैं ? १०४ बुखार है ।'

'तुम अकेली कैसे रहोगी ? सारी रात कैसे जागोगी ?'

'क्या हुआ । एक बेड तो यहाँ एक्स्ट्रा है ही, बिस्तर मँगाये लेती हूँ । रात-बिरात जाने कब किस चीज़ की जरूरत आ पड़े । भरे बुखार में क्या ये दरवाजा खटखटाने उठेंगे ? आप जा कर सोइये । किस उधेड़-बुन में पड़े हैं ?'—सुरेखा के स्वर में अब कुछ रुखास आ गयी थी ।

'तुम अकेली नहीं रहोगी । मैं अपना पलँग भी यहीं मँगवाये लेता हूँ । काफी बड़ा कमरा है । आसानी से तीन पलँग आ जायेंगे ।'

सुरेखा इसमें कुछ भी फेर-बदल नहीं कर सकी । कर भी कैसे सकती थी ? जिन्दगी की सांकल की एक कड़ी भी तो नहीं टूट पायी थी अब तक ?

अंत में मुझे बोलना ही पड़ा । 'आप लोग यह सब झंझट क्यों कर रहे हैं ? मैं पहले से बहुत अच्छा हूँ । नींद आने पर रात भर सोता रहूँगा ।'

'सोये कैसे रहेंगे ? हर चार घंटे के बाद एक कैप्सूल जो लेना है ।'

'हम दोनों पारी-पारी से जागेंगे ।'—प्रोफेसर साहब ने धीरे से कहा । और सुरेखा ने अनमने मन से स्वीकृति दे दी ।

● ●

यादों में डूबी एक शाम

साफ-सुथरा छोटा-सा ड्राइंग रूम । सब चीजें करीने से सजी हुई हैं । दीवार पर एक ओर महाराज जी का बड़ा-सा चित्र है, दूसरी ओर उसके स्वर्गीय पिता की, काले फ्रेम में जड़ी बड़ी-सी तस्वीर । दो खिड़कियों के बीच उसकी तरुणाई के दिनों का उसका फोटो भी है—काले घने बाल, गोल भरा चेहरा और बोलती-सी बड़ी-बड़ी आँखें । सुघराई से कटी-छँटी पतली स्याह मूंछें बड़ी भली लग रही हैं ।

मैं अकेला बैठा-बैठा ऊब गया था । योंही उसकी तस्वीर के सामने जा खड़ा हुआ व चश्मा उतार कर उसे बड़े ध्यान से निहारने लगा । बीते दिन अन्तर में अंकुरित होकर, आँखों में झूलने लगे हैं । मेरा मन यादों की झाड़ी में इस बुरी तरह से उलझ गया है कि सिगरेट अंगुलियों में ही फँसी रह गयी है । मैं सिगरेट पीना भूल गया हूँ । जब अँगुलियों में आँच महसूस हुई तब कहीं जाना कि मेरे हाथ में जली हुई सिगरेट भी है ।

मैंने सिगरेट खिड़की खोल कर बाहर फेंक दी है । वह सिगरेट नहीं पीता । उन दिनों मैं भी नहीं पीता था । सिगरेट पीना तो दूर रहा, पान तक नहीं खाता था । उसे सिगरेट से बहुत चिढ़ है, इसीलिए शायद उसके ड्राइंग रूम में ऐश-ट्रे नहीं है । खिड़की खोलते ही ठंडी हवा ने मुझे डस-

सा दिया है—वह हलका-सा झोंका मुझे एकदम से कँपा गया है। वैसे वहाँ ठंड ज्यादा नहीं पड़ती। उन दिनों सारे देश में शीत-लहर का दौर आया था। उसी का प्रभाव है यह।

सिगरेट फेंक कर अब सोफे पर बैठ गया हूँ—खोया-खोया-सा। मेरी आँखें पुनः उसके चेहरे पर जा गड़ी हैं। मैंने अब दूसरी सिगरेट सुलगा ली है। अपने आप धुँए के लच्छे ऊपर उठने लगे हैं। और धुँओं के उन लच्छों में एक मूर्ति खड़ी होती जा रही है—नवनीत-सी कोमल, चैत की चाँदनी-सी लुभावनी, ताजे गुलाब-सी खिली—शोभा। वैभव की गोद में पली शोभा को गुलाब के फूलों से बहुत प्यार था। उसके बगीचे में जाने कितने प्रकार के गुलाब थे। वे गुलाब कँटीली डाल पर फूल कर योंही नहीं झर जाते थे। जब भी मैं उसके बंगले पर पहुँचता तो उसके सामने गुलाबों से भरा गुलदस्ता रखा होता। एक बड़ा-सा गुलाब उसके जूड़े की भी शोभा बढ़ाता।

गुलाब स्वयं प्रकृति की कविता है। तब गुलाबों से अनुराग रखने वाली शोभा कविता से अछूती रहती, यह कैसे संभव था। वह कविता रचती थी। मेरी दृष्टि में तो वह स्वयं कविता थी।

उसके पिता नहीं थे। चाचा उसे अपनी बेटी ही मानते थे। वे मुझे कवि के रूप में अच्छी तरह जानते थे। एक दिन उन्होंने अपनी गाड़ी भेज कर मुझे बँगले पर बुलाया। बड़े स्नेह के साथ चाय पिलायी। उसने ही मेरे प्याले में चाय डाली थी। मुसका कर धीरे से पूछा था—चीनी कितनी—दो या तीन ? मैंने योंही कह दिया था—जितनी आप चाहें। मन में तो उठा था कह दूँ—आपके छूने से ही जरूरत से ज्यादा मीठी हो गयी है। अब चीनी की क्या जरूरत है ? उसने दो चम्मच चीनी डाल कर प्याला मेरी ओर बढ़ा दिया था, और मैं चाय पीते-पीते गुलाबों की भीड़ में खो गया था।

चाय पी चुकने के बाद उसके चाचा बोले थे—'शोभा भी कविता करती है। मैं चाहता हूँ, आप इसकी कवितायें देख लिया करें। अब तक

। कोई कविता कहीं नहीं छपी। जब आपका सर्टिफिकेट मिल जायगा, वे छपती जायेंगी।'

मैंने बड़ी आत्मीयता से कहा था—'कविता तो कविता के रूप में ही लेखनी से जन्म पाती है। वह जन्म से ही मानिनी होती है। दूसरों के सुधार-संशोधन पसंद नहीं करती।'

इसके बाद वह अपनी कविता की कापी उठा लायी थी। उसने वह कापी मुझे परीक्षा-कापी की भाँति दे दी थी—भय मिश्रित संकोच के साथ। उसकी दो-चार कवितायें पढ़ने के बाद मेरे मुँह से बरबस निकल पड़ा था—'आप बहुत अच्छा लिखती हैं। प्रतिभा भी है आप में। मूर्ति गढ़ चुकने के बाद भी मूर्त्तिकार उसे बार-बार सँवारता है, अंत तक उस पर छैनी चलाता रहता है। यही कवि को भी करना चाहिए।....आप कुछ कवितायें मुझे दे दीजिए। मैं उन्हें ठीक कर दूँगा।'

उसने कविता की कापी ही मेरे हाथ में पकड़ा दी थी। वह कार तक मुझे छोड़ने आयी थी। इसके बाद मैं बराबर उसके यहाँ आने-जाने लगा। कभी वह स्वयं गाड़ी भेज देती, कभी मैं ही स्वयं चला जाता। जब वह मेरे सामने बैठी होती, तब ऐसा लगता जैसे कला की अँगुलियों ने तराशी कोई जीवित मूर्ति सौन्दर्य के सिंहासन पर आसीन है।

उन दिनों राजेश मेरे साथ ही रहता था। बी० एस-सी० में पढ़ता था। उसके पिता जहाँ स्थानान्तरित होकर गये थे, वहाँ डिग्री कालेज नहीं था। हम दोनों बचपन के साथी थे। मैं रोजी-रोटी से लग गया था। एक अखबार के सम्पादकीय विभाग में काम मिल गया था मुझे। दिन भर अखबार के दफ्तर में कलम घिसता और रात्रि के सन्नाटे में कविता रचता।

एक दिन मैंने राजेश को अपनी एक कविता सुनायी। वैसे भी उन दिनों सबसे पहले उसे ही मेरी कविता सुनने का सौभाग्य प्राप्त होता। वह कविता सुन कर बोला—'इस बार तो बड़ी ऊँची उड़ान भरी है यार। किसके केश-कुन्तलों में गुलाब बन कर शोभा पाना चाहते हो ? किसके आंगन में हरसिंगार-से झरने की मीठी चाह उठी है तुम्हारे मन में ?

आखिर बताओ तो कौन है वह उर्वशी ?'

मैंने उसकी पीठ पर एक धौल जमाते हुए कहा था—'आखिर तुम रहे बुद्धू के बुद्धू। यह क्यों भूल जाते हो मेरे दोस्त, कि मैं कोई विज्ञान का विद्यार्थी नहीं, कवि हूँ, कवि। सूझों की तूली से सपनों के ऐसे चित्र बनाता हूँ जिनमें स्वयं सत्य बोलता है। तुम हर क्षण यथार्थ में रहते हो तभी ऐसी बेतुकी बातें करते हो।'

उसने फिर वही रामायण पढ़ी थी—'मुझे उल्लू न बनाओ प्यारे, मैं कवियों की नस-नस पहचानता हूँ। जरूर किसी ने तुम पर जादू डाल दिया है। सीधे से बता दो, नहीं तो तुम दोनों में लड़ाई ठनवाये बिना न रहूँगा।'

'चल हट, बड़ा आया लड़ाई ठनवाने वाला'—यह कह कर मैंने उस दिन उसका मुँह बन्द कर दिया था। लेकिन जब भी वह अपनी पर आता तो वह मेरी वही कविता बन-बन कर गाने लगता। विज्ञान के विद्यार्थी से मेरी वह कविता गोंद की तरह चिपक गयी थी।

मैं अतीत के खंडहरों में वर्तमान बना बैठा था। तभी राजेश आकर धम्म से मेरे सामने कुर्सी पर लुढ़क-सा गया। वह मुझे बड़ा थका-हारा-सा लगा। दो-तीन मिनट के बाद बोला—'तुम तब से यहीं इसी कमरे में बंद हो। बाहर आँगन में निकल गये होते। कैसा रोमैंटिक मौसम है—ठंड में भीगी सुरमई साँझ और मेरे लगाये किसिम-किसिम के गुलाब। बिन पिये ही झूमने लगते और....।'

मैंने बीच में ही उसकी बात झेल ली—पुराने रोमैंटिक दिन याद आ जाते हैं। वही बाग, वही लम्बा-चौड़ा हरा-भरा लान, तरह-तरह के गुलाबों की भीड़ और गुलाबों की उस भीड़ में डोलता-बोलता एक बड़ा-सा गुलाब। यही सब मन की आँखें देखने लगतीं, यही न ? वे दिन तो अब सपने हो गये। मन के तार जाने कैसे एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। मैं अभी यहाँ बैठा लगातार जाने कितनी देर तक तुम्हारा यह चित्र देखता रहा। यादों की परतें खुलती चली गयीं।....अभी मैं सचमुच शोभा के बारे में ही सोच रहा था। तुमने भी शायद उसी की ओर संकेत करना चाहा था।'